ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 06 सितंबर 2015 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 06 सितंबर 2015 से 12 सितंबर 2015

मा.कृ. 08 ● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 36, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी. गर्ल्स कालेज यमुनानगर में

21 कुंडीय हवन यज्ञ से हुआ सत्र का शुभारंभ

यमुनानगर डी.ए.वी. गर्ल्स कालेज में नए सत्र का शुभारम्भ 21 कुंडीय हवन यज्ञ से हुआ। कुरुक्षेत्र से आए आचार्य देवव्रत जी ने मंत्रोच्चारण के साथ हवन कुड़ों में पूर्णाहुति डलवायी। वैश्य कॉलेज रोहतक की पूर्व प्राचार्या डॉ. श्यामा शर्मा ने बतौर मुख्य अतिथि कार्यक्रम में शिरकत की। कालेज प्रिंसिपल डॉ. सुषमा आर्या ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की।

आचार्य देवव्रत जी ने कहा कि पवित्र यज्ञ के द्वारा नए सत्र का शुभारंभ सभी के लिए सौभाग्य की बात है। हवन यज्ञ में दान का विशेष महत्व होता है, यज्ञ कुंड की अग्नि में घी और सामग्री दान किया जाता है। जो वातावरण को शुद्ध करने साथ–साथ लोगों को आत्मिक शांति भी प्रदान करती है। परमात्मा के प्रति समर्पित भाव से यज्ञ का आयोजन किया जाता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में यज्ञ को वेदारंभ के नाम से जाना जाता है। गुरुकुल में आचार्य बच्चों को सर्वांगिण विकास करते थे। उन्होंने बताया कि विद्या की ज्योति के पुंज को आचार्य कहते हैं, जबकि बच्चों को समिधाएं कहा जाता है। जब दोनों मिलते हैं, तो विद्या का संचार होता है। आचार्य जी ने भगवान से कामना की कि छात्राओं का नया सत्र उन्हें बुलंदियों पर पहुंचाए। इसके उपरांत उन्होंने परमात्मा के श्री चरणों की कामना की और कहा कि पूरा वर्ष स्टाफ और छात्राओं के लिए आनंदमय हो। विद्या की देवी का प्रवाह सभी पर बना रहे। संपूर्ण महाविद्यालय का उद्देश्य पूर्णता को प्राप्त हो। पवित्र वातावरण में विद्या का अध्ययन चले। परमात्मा यहां के स्टाफ व छात्राओं को ऐसा बल दे कि कि वे सफलता की बुलंदियों को छू लें। उन्होंने ईश्वर से कामना की कि हमारे शरीर के सभी अंगों को निरोग रखें साथ ही शांति के लिए परमात्मा की प्रार्थना की गई। इसके उपरांत संगीत विभाग की अध्यक्षा डॉ. नीता द्विवेदी व छात्राओं ने हे प्रभू दुर्गुण मेरे हर लीजिए भजन प्रस्तुत कर वातावरण को भक्तिमय बना दिया। मुख्य अतिथि डॉ. श्याम शर्मा ने छात्राओं से आह्वान किया कि वे जीवन में लक्ष्य को निर्धारित कर उसे पूरा करने के लिए अथक मेहनत करें। साथ ही उन्होंने कहा कि उनके लिए सौभाग्य की बात है कि उन्होंने वर्ष 1965 से 1971 तक इसी महाविद्यालय में बतौर शिक्षिका काम किया है और आज मुख्य अतिथि के रूप में इस कार्यक्रम में शामिल हुई है। कालेज प्रिंसिपल डॉ. सुषमा आर्या ने आचार्य देवव्रत का आभार व्यक्त किया।

डी. ए. वी. कॉलेज जालंधर में यज्ञ से नया सत्र शुरू हुआ

तमसो मा ज्योतिर्गमय यानि अज्ञान के अंधकार से ज्ञान (शिक्षा) के प्रकाश की ओर चलो'' भारत की इस महान संस्कृति व परम्परा को निभाते हुए डीएवी कालेज जालंधर यज्ञ से किया। इस मौके पर स्वामी सुमेधा नंद जी महाराज के साथ प्रिंसिपल डा. बी बी शर्मा, विद्यार्थियों व स्टाफ सदस्यों ने हवन यज्ञ में भाग लेकर नए सत्र के लिए प्रार्थना की।

कालेज के प्रिंसिपल डा. बी बी शर्मा ने विद्यार्थियों का स्वागत कर उन्हें आर्य समाज एवं कालेज के नियमों की जानकारी देने के साथ कठिन परिश्रम करने के लिए प्रेरित किया। प्रिंसिपल डॉ शर्मा नें कहा, आर्य समाज का चिन्तन, दर्शन, मूल्य तथा आदर्श हमें जीवन से जोड़ते हैं और पूर्णता की ओर ले चलते हैं। आर्य समाज द्वारा संचालित संस्थाओं का शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वेद अपनाने से ही सुख, समृद्धि व आनंद प्राप्त हो सकता है।

प्रिंसिपल डा. बी बी शर्मा ने बताया कि कॉलेज का फोकस विद्यार्थियों को गुणवत्ता की शिक्षा उपलब्ध करवाने के साथ उनकी प्रोंफेशनल ग्रोथ करना भी हैं। कॉलेज विद्यार्थियों के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षणिक गुणवत्ता उपलब्ध करवाने के लिए वचनबद्ध है। यज्ञ के दौरान नए फैकल्टी सदस्यों का स्वागत किया गया। उन्होंने कहा कि उनका मुख्य फोकस रिसर्च कार्य पर ज्यादा रहेगा।

इस मौके पर डीएवी के पूर्व प्रिंसिपल सीएल अरोड़ा लोकल मैनेजिंग कमेटी के चेयरमैन सेठ कुंदल लाल अग्रवाल, सहित भारी गिनती में प्राध्यापक प्राध्यापिकायें उपस्थित थीं।

डी.ए.वी. फिरोज़पुर में शैक्षणिक सत्र का शुभारम्भ यज्ञ से हुआ

डी.ए.वी. कॉलेज फॉर वूमेन, फिरोजपुर कैंट में शैक्षणिक सत्र 2015–16 का शुभारम्भ यज्ञ से किया गया। यज्ञ का सचांलन श्री मनमोहन शास्त्री ने किया। प्रिंसिपल डॉ. वालिया ने कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए इस सत्र में प्रविष्ट होने वाली नवागंतुक छात्राओं को डी.ए.वी. की महान परमपराओं से अवगत कराया और उन्हें यज्ञ के महत्व व प्रभाव के बारे में विस्तृत जानकारी प्रदान की। उन्होंने छात्राओं को कॉलेज में कक्षानुसार आयोजित होने वाले हवन में तन से ही नहीं अपितु मन से उपस्थित रह कर ईश्वर का आशीर्वाद पाने के लिए प्रेरित किया। डॉ. वालिया ने अपने उद्बोधन से सत्र 2014–15 में यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाली छात्राओं को बधाई दी व आगे भी उन्हें कठोर परिश्रम करते हुए कॉलेज का नाम ऊंचा करने की प्रेरणा दी। इस यज्ञ में कॉलेज के समस्त स्टाफ व छात्राओं ने भाग लिया। शान्तिपाठ से यज्ञ सफलतापूर्ण सम्पन्न हुआ।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – पूनम सूरी

आर्य जगत्

सप्ताह रविवार 06 सितंबर, 2015 से 12 सितंबर, 2015

वाणी के सलिल में स्नान

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैः, भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम्।
मा मा प्रापत् पाप्मा मौत मृत्युः , अन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः।।

अथर्व17.1.28

ऋषिः **ब्रह्मा।** देवता **आदित्यः।** छन्दः **त्रिष्टुप्।**

● (**अहं**) मैं (**ऋतेन**) सत्य से (**च**) और (**सर्वैः**) सब (**ऋतुभिः**) ऋतुओं से (**गुप्तः**) रक्षितज [**होऊँ**], (**भूतेन**) अतीत से (**भव्येन च**) और भविष्यत् से (**गुप्तः**) रक्षित [**होऊँ**]। (**पाम्पा**) पाप (**मा**) मुझे (**मा**) मत (**प्रापत्**) प्राप्त हो, (**मा उत**) **न ही** (**मृत्युः**) मृत्यु [**प्राप्त हो**]। (**अहं**) मैं (**वाचः**) वेदवाणी के (**सलिलेन**) सलिल से, ज्ञानामृत से (**अन्तः दधे**) [स्वंय को] आच्छादित कर देता हूँ।

● मैं अ–सुरक्षा के सन्त्रास से व्याप्त इस जगत् में सर्वात्मना रक्षित रहना चाहता हूँ। पर रक्षा का उपाय क्या है? सहस्त्रों सैनिकों को अपने चारों ओर सन्नद्व करके भी मैं वैसी रक्षा प्राप्त नहीं कर सकता, जैसी स्वयं नैतिक नियमों में बंधकर तथा आत्म–बल को जगाकर पा सकता हूँ। सर्वप्रथम मैं 'सत्य' से रक्षित होऊँ। मनुष्य बहुधा अपनी रक्षा के लिए 'असत्य' का अवलम्बन करता है। वह सोचता है कि असत्य कहकर मैं अपराध के दण्ड से बच जाऊँगा। पर असत्य छिपता नहीं। अपराधी को अपराध का दण्ड तो मिलता ही है, असत्य–भाषण का अतिरिक्त दण्ड भोगना पड़ता है। इसके विपरीत सत्य बोलकर अपना अपराध स्वीकार कर लेने पर वह क्षमा का पात्र हो जाता है। मैं ऋतुओं से भी रक्षित होऊँ। ग्रीष्म, बर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर, वसन्त, छहों ऋतुएँ व्यवस्थित रूप से आकर प्रकृति के कार्य–कलाप का चारुता के साथ निर्वाह करती हैं। इन ऋतुओं से शिक्षा लेकर मैं भी अपने कार्य को यथासमय करने की आदत डालूँ, तो मैं भी रक्षित रह सकता हूँ। यदि मैं अपने राष्ट्र के उज्ज्वल अतीत से शिक्षा लेकर वर्तमान को उज्ज्वल करने का व्रत लूँ, तो अतीत भी मेरा रक्षक बन सकता है। उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करके उसे मूर्तरूप देने के प्रयास द्वारा 'भव्य' को भी मैं अपना रक्षक बना सकता हूँ।

पाप मुझे न प्राप्त हों। यदि मैं दृढ़ता धारण लूँ कि किसी भी अवस्था में पाप के वशीभूत नहीं होऊँगा, तो पाप सदा मुझसे दूर रहेगा। परिणामतः नैतिक दृष्टि से मैं सुरक्षित रहूँगा। मृत्यु भी मुझे न प्राप्त हो। यों तो जिसने जन्म लिया है वह मृत्यु से ग्रस्त होता ही है, किन्तु जब भी चाहे अकाल मृत्यु आकर हमें ग्रस ले तो हम सर्वथा असुरक्षित रहते हैं। अतः सुरक्षा के लिए अकाल मृत्यु से बचना आवश्यक है। अन्त में आत्मरक्षार्थ मैं वाणी के सलिल से, वेदवाणी के ज्ञानामृत से, स्वयं को अच्छादित करता हूँ। जैसे शीतल–पवित्र जल का पान और उसमें स्नान श्रम और सन्ताप को मिटाकर हमारी रक्षा करता है, वैसे ही वेदवाणी के पवित्र ज्ञान–सलिल में स्नान भी हमारे अज्ञान–मूलक दुःख–द्वन्द को हरकर हमारा रक्षक बनता है। अतः मैं वेदवाणी के निर्मल ज्ञान–सरोवर में डूबकी लगाता हूँ और सब भीतियों से रहित, सब अविद्याओं से मुक्त तथा सब कर्त्तव्य–बोधों से स्फूर्ति पाकर पूर्ण सुरक्षित हो जाता हूँ।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

भक्त और भगवान

● महात्मा आनन्द स्वामी

बात चल रही थी कि वेद ने कहा 'मनुष्य बनो'। उपनिषद् के ऋषि ने कहा ईश्वर को प्राप्त करने की विधि मैं तुम्हारे लिये कहता हूँ– तुम, जो मनुष्य हो।

स्वामी जी ने बताया कि दुःख इस बात का है कि आज हम सब कुछ बनना चाहते हैं केवल मनुष्य ही नहीं बनना चाहते। हमने सोच लिया है कि जीवन मात्र खाने पीने के लिए है। तैत्तिरीय उपनिषद् की कथा सुनाकर स्वामी जी ने बताया कैसे मनुष्य पशु से भी अधिक खाने के पीछे पड़ा है। खाने के बिना जीवन नहीं चलता लेकिन बहुत अधिक खाने से शरीर को कितना नुकसान होता है यह दृष्टान्तों द्वारा भी बताया।

बीच में व्रत का महत्त्व बताकर स्वामी जी ने व्रत में अत्यधिक खाने को दोषपूर्ण बताया। खाने का सीधा सा तात्पर्य यह है कि उचित ढंग से हो तो दो खाओ, एक रोटी के स्थान पर पानी पीओ और एक रोटी का स्थान वायु के लिये छोड़ दो। अन्धाधुन्ध खाने का परिणाम मृत्यु है।

स्वामी जी ने बताया कि आज का युग खाने मात्र का युग बन गया है। वेद ऐसे लोगों को 'असुतृप कहता है और यह भी कि केवल अपना पेट भरने में यह लोग–पाप खाते हैं और मृत्यु को अपने पास बुलाते हैं।

मनुष्य वे ही हैं जो सौ हाथों से कमा कर हजार हाथों से बांटते हैं।

अब आगे....

ज्ञान, कर्म, उपासना– तीन साधन हैं उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, जिसके लिए यह मानव–जीवन मिला। कौन–सा कर्म अच्छा है कौन–सा नहीं, इसका पता ज्ञान से लगता है। तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि बुद्धि क्या है ? एक ही बात के सम्बन्ध में कुछ लोग कहते हैं कि यह ठीक है, दूसरे कहते हैं कि यह अनुचित है। तब यह निर्णय कैसे हो कि ठीक क्या है और अनुचित क्या है? इसका निर्णय सात्त्विक बुद्धि से होता है। बुद्धि तीन प्रकार की है– बुद्धि अर्थात् साधारण बुद्धि, कुबुद्धि अर्थात् विपरीत बुद्धि और सुबुद्धि अर्थात् सात्त्विक बुद्धि। बुद्धि जब सात्त्विक प्रयत्न से शुद्ध होती है तो उसे मेधा कहा जाता है। मेधा जब और शुद्ध होती है तो प्रज्ञा बनती है। प्रज्ञा के पश्चात् आनेवाली बुद्धि को प्रतिभा कहा जाता है। उसके उत्पन्न होने से हृदय में ज्ञान का प्रकाश होता है। इससे भी आगे ऋतम्भरा बुद्धि है– ऐसी बुद्धि जिसमें असत्य का चिह्न भी नहीं, जो केवल ऋत अर्थात् सदा रहनेवाले सत्य को अपनाती है। यह ऋतम्भरा बुद्धि ही सात्त्विक बुद्धि है। ऐसे भोजन हैं, ऐसी औषधियाँ हैं और योग के ऐसे साधन भी हैं, जिनमें बुद्धि को तीव्र बनाया जा सकता है और सात्त्विक भी।

इस सात्त्विक बुद्धि से देखना चाहिए कि जो कर्म हम करते हैं वह अच्छा है या बुरा; ईश्वर की ओर ले–जानेवाला है या प्रकृति की ओर। इस अच्छे या बुरे कर्म का नाम ही चरित्र है। जिस व्यक्ति का चरित्र अच्छा नहीं, जो प्रयत्न करके बुरे कर्म से बचने और उत्तम कर्म करने का यत्न नहीं करता, उसका मन प्रभु–भजन में कभी लग नहीं सकता। यह मन एक तालाब की भाँति है। तालाब का पानी शुद्ध हो, निश्चल हो तो उसमें देखने से नीचे के पदार्थ दिखाई देते हैं; परन्तु यदि कोई व्यक्ति दिनभर इस ताल में कूड़ा–कचरा–गन्दगी फेंकता रहे, इस पानी को मटमैला करता रहे, उसे चंचल बनाता रहे और सायंकाल चाहे कि उसमें अपना रूप देख ले तो कुछ भी दिखाई नहीं देगा। ऐसे ही यदि मन को मैला किया जा रहा है तो उसके अन्दर के पदार्थ कैसे दीखेंगे?

इस प्रकार आप देखिये कि उपासना के लिए कर्म आवश्यक है, कर्म के लिए ज्ञान। ज्ञान, कर्म और उपासना, इन तीनों के लिए यह मानव–शरीर मिला है। इस उपासना की भावना से, भक्ति की भावना से ही ऋग्वेद के शब्दों में भक्त पुकार कर रहा है– ''मेरे प्रीतम! ओ मेरे प्यारे! ओ मेरे मनमोहन! मेरे जीवननाथ! कब आयेगा वह दिन, कब निकलेगा वह सूर्य, जब अपनी आत्मा से बातें करूँगा?'' कुछ लोग कहेंगे कि आनन्द स्वामी आर्यसमाज की वेदी पर बैठकर कैसी बातें कहता है? हम तो ईश्वर को निराकार कहते हैं और तू कहता है ईश्वर से बातें होती हैं? पर यह परम सत्य है, झूठ नहीं। इसीलिए वेद में पुकार करते हुए भक्त ने कहा, ''कब आयेगा वह दिन जब मैं तुमसे बातें करूँगा? जब मैं तेरा प्रेमपात्र बनकर तुझे अपना बना लूँगा? और प्यारे, कब आयेगी वह सौभाग्य की घड़ी जब तू मेरी प्यार से दी हुई भेंट को स्वीकार करेगा? हाय रे! कब उदय होगा वह सूर्य, जब मैं तेरे दर्शन पाऊँगा?''

यह है पुकार–कब? कब? कब?

यह है प्रश्न जिसका उत्तर यह चिल्लाता हुआ भक्त चाहता है। परन्तु यह तो वेद–मन्त्र है न, वेद–मन्त्रों में एक जादू होता है। इनमें प्रश्न इस प्रकार किया जाता है कि प्रश्न में ही उत्तर छिपा रहता है। इस मन्त्र में भी

सब प्रश्नों का उत्तर विद्यमान है– केवल एक शब्द में और वह शब्द है 'सु–मना' – अच्छे मन से। यह है भेद की बात। मन को सु–मन बना लो तो प्रभु का दर्शन मिलता है अवश्य; और यदि इसको कु–मन, बुरा मन बना लो, मैला बना लो तो–

नदी किनारे मैं खड़ी, पानी झिलमिल होय।
मैं मैली पिया उजले मेरा किस विध मिलना होय।।

नहीं, इस प्रकार प्रीतम नहीं मिलते। उन्हें मिलना तो 'सु–मन' उत्पन्न करो। अपने मन को अच्छा करो, इसकी मैल को दूर करो। तब उसके दर्शन होंगे अवश्य।

परन्तु दर्शन हो जाने से ही क्या काम समाप्त हो जाएगा? ये एक सज्जन बैठे हैं, यहाँ से कश्मीर तक उनकी बसें चलती हैं। मैं उनके पास जाता हूँ। उन्हें मिलने का यत्न करता हूँ। ये प्रसन्न हो जायँ, इसलिए अपने साथ अमरूदों की एक टोकरी भेंट देने के लिए ले जाता हूँ। मार्ग साफ है, किसी ने मुझे रोका नहीं। मैं उनके घर गया, भेंट दे दी, दर्शन कर लिये, इससे क्या मेरा कर्म समाप्त हो गया? अब मुझे तो जाना है कश्मीर, उनकी बस में बैठकर। केवल दर्शन करके कार्य कहाँ समाप्त हुआ? वह तो अभी आरम्भ हुआ है। हिन्दी के एक कवि ने कहा–

आये वह.........

कौन है वह? मेरे प्रीतम, मेरे चितचोर, मेरे मनमोहन, मेरे प्रकाश–स्वरूप, मेरे ज्योति–भण्डार–

आये वह और झाँक कर ही लौट कर जाने लगे। मैंने कहा दामन पकड़, क्यों लौट कर जाने लगे?

मैं तो कभी से जोहती थी बाट शुभ–आगमन की। फिर क्यों चले हो छोड़ प्रिय, शोभा बढ़ाओ सदन की।।

हाँ, केवल दर्शनों से प्यास नहीं बुझती, और भी तीव्र हो उठती है। तब जी चाहता है कि वे बैठ जाएँ नहीं; परन्तु हाय रे दुर्भाग्य–

दामन झटक कर चल दिये वो और यूँ कहते हुए, बैठूँ कहाँ? तेरे सदन में ग़ैर हैं बैठे हुए।

अरे निकाल इन ग़ैरों को! इन काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को निकाल दो! इस भीड़ में तेरा प्रीतम तुझे मिलेगा नहीं। प्रेमी एकान्त में मिलते हैं, बाजारों में नहीं। उनकी बातें एकान्त में होती हैं। इसलिए इस मंत्र में कहा, 'ओ मेरे प्यारे! अब मैं तुझसे बातें करूँगा।' साथ ही उत्तर दिया कि 'जब यह मन सु–मन हो जायेगा।'

कई बार लोगों से सुनता हूँ कि 'प्रभु–भजन में मन नहीं लगता।' अरे भाई! लगे कैसे? इसको सु–मन बनाओ तो लग जायेगा। इस मन का रोना भगवान राम भी रोते थे। गुरु वशिष्ठ से जाकर उन्होंने कहा, ''गुरुदेव! यह मन वश में नहीं होता।'' गुरु बोले, ''ठीक कहते हो, वास्तव में वश में नहीं होता।'' राम ने कहा, ''परन्तु मुझे तो इसे वश में करना है अवश्य! या तो इसे वश में करने की विधि मिले, नहीं तो आज से खाऊँगा नहीं, पीऊँगा नहीं। यदि मन को वश में करने का कोई उपाय नहीं तो मैं अपने प्राण दे दूंगा।'' तब गुरु वशिष्ठ घबराये; बोले, ''नहीं राम, प्राण देने की आवश्यकता नहीं, मन को वश में करने का उपाय भी है।''

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।

(यजु0 40/5)

''वह सबको हिलाता है परन्तु हिलता नहीं; वह दूर है, निकट भी है; सबके अन्दर भी है, सबके बाहर भी।''

कैसी विरोधी बातें हैं! परन्तु विरोधी होते हुए भी सत्य हैं। वायु चलती है, रुकती नहीं, परन्तु रुकती भी है। मन चलता है, रुकता नहीं, परन्तु रुकता भी है। हवा तब रुकती है जब पृथ्वी की आकर्षण–शक्ति से परे चली जाय, पृथ्वी की परिधि पर पहुँच जाय। पानी तब रुकता है जब समतल भूमि आ जाय और मन तब रुकता है जब प्रभु को खोजता–खोजता थककर प्रभु–महिमा में खो जाये। उस समय के लिए कहा है **'तन्नैजति'**– तब वह चलता नहीं।

परन्तु राम की तसल्ली तो नहीं हुई; बोले, ''मैं प्रभु के पास जाने के लिए मन को वश में करने का उपाय पूछता हूँ, आप कहते हैं कि प्रभु के पास जाकर मन वश में हो जाता है। अब यह बात मैं करूँ कैसे? कहाँ ढूँढूँ उस ईश्वर को? कहाँ जाकर खोज करूँ? किससे पूछूँ? कहाँ मिलेगा वह?''

गुरु ने देखा कि इस प्रकार कार्य नहीं बनता, तब पैंतरा बदला, प्यार से कहा, ''सुनो राम! मन को वश में करने का साधन मन है।''

आप कहेंगे, यह विचित्र उत्तर है। एक ही मन का झगड़ा समाप्त नहीं होता, अब दो मन हो गए; उनका निपटारा कौन करेगा? परन्तु वशिष्ठ जी ने जब दूसरे मन की बात कही तो इसलिए कि लोहे को लोहा काटता है। जो लोहा भट्ठी से बार–बार निकलकर फौलाद बन गया है, जिसपर सान चढ़ गई है, जिसकी धार तेज हो गई है, वह दूसरे लोहे को काट देता है। इसी प्रकार वह मन, जिसने अपने–आपको तप और योग से साधन से वश में कर लिया है, वह दूसरे मन को वश में कर सकता है। इसलिए कठोपनिषद् के ऋषि ने कहा–

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत!

''उठो, जागो! और उनके पास पहुँचो जो पहुँचे हुए हैं।'' यहाँ एक विचित्र–सी बात कह दी गई। पहले कहा उठो! फिर कहा, जागो! वास्तव में मनुष्य जागता पहले है, उठता बाद में है। तब यहाँ यह उलटी बात क्यों कह दी?

इसलिए कि गुरु की खोज करने के लिए उठे हो तो जागकर खोज करो। सावधान होकर आगे बढ़ो। यह संसार बहुत बुरा है। इसमें भाँति–भाँति की दुकान लगाये लोग बैठे हैं; स्वयं उन्हें मार्ग का पता नहीं, दूसरों से कहते हैं– आओ तुम्हें मार्ग दिखायें। सावधानता के साथ उन लोगों से बचो! उनके पास पहुँचो जो पहुँचे हुए हैं, वे तुम्हें मार्ग दिखायेंगे।

मैं कैलास की यात्रा के लिए गया। अल्मोड़ा से डेढ़ सौ मील के अन्तर पर गरबियाँग है। वहाँ तक मार्ग साफ है; किसी पथ–प्रदर्शक की आवश्यकता नहीं। आगे का मार्ग ज्ञात नहीं था इसलिए गरबियाँग से एक पथ–प्रदर्शक ले लिया। वह हमें सरलता से कैलास तक ले गया, आराम से वापस ले आया। सब–कुछ हम देख आये। यदि उसके स्थान पर किसी ऐसे व्यक्ति को अपना पथ–प्रदर्शक बनाते जिसने मार्ग देखा ही नहीं था तो वह भी मरता और हम भी मरते।

मैं कैलास की यात्रा के लिए गया। अल्मोड़ा से डेढ़ सौ मील के अन्तर पर गरबियाँग है। वहाँ तक मार्ग साफ है; किसी पथ–प्रदर्शक की आवश्यकता नहीं। आगे का मार्ग ज्ञात नहीं था इसलिए गरबियाँग से एक पथ–प्रदर्शक ले लिया। वह हमें सरलता से कैलास तक ले गया, आराम से वापस ले आया। सब–कुछ हम देख आये। यदि उसके स्थान पर किसी ऐसे व्यक्ति को अपना पथ–प्रदर्शक बनाते जिसने मार्ग देखा ही नहीं था तो वह भी मरता और हम भी मरते।

मार्ग वह दिखा सकता है, जिसने मार्ग देखा हो। परन्तु पहुँचे हुए का पता कैसे लगाना? यह कैसे देखना कि जिसके पास हम गये हैं उसका अपने मन पर अधिकार है या नहीं? यह भी बताता हूँ।

सुनो! ऐसे व्यक्ति की पहचान यह है कि आप उसके पास बैठे हैं तो आपका मन उसके पास बैठे रहने से उकताये नहीं, न यह कहे कि उठो, चलो यहाँ से। यदि ऐसा अनुभव हो तो समझो इस व्यक्ति से कुछ प्राप्त हो सकता है। दूसरी पहचान यह है कि उसका अपनी जिह्वा पर अधिकार हो। यदि वह चाट और गोलगप्पे खाता फिरता है तो याद रखिये कि उसमें यह शक्ति नहीं कि आपको मार्ग दिखा सके। और तीसरी पहचान यह है कि उसे क्रोध न आता हो। कुछ दिन उसके पास रहकर देखो। यदि क्रोध में आ जाय तो समझो कि उससे आपका कार्य बननेवाला नहीं। जो आत्मज्ञानी है और जिसने आपे मन को वश में कर लिया है, उसके लिए आवश्यक है कि उसे क्रोध न आये।

भक्त दादू की कहानी पहले भी कई बार सुना चुका हूँ। आपको भी सुनाता हूँ। दादू महाराज एक नगर के बाहर रहते थे। भक्ति से भरे गीत गाते। कोई आ जाय तो उसे भक्ति का उपदेश देते। स्थान–स्थान पर उसकी प्रसिद्धि होने लगी। शहर में भी पहुँची। शहर के कोतवाल भक्ति की बातों में कुछ–कुछ रुचि रखते थे। घोड़े पर बैठे, शहर से चल पड़े कि दादू महाराज के दर्शन कर आएँ, उनसे भक्ति का अमृत ले आयें। परन्तु भक्ति में रुचि रखते हुए भी, थे तो वे कोतवाल ही। शहर से बाहर जंगल में पहुँचे। दूर तक चले गये; कहीं कोई दिखाई नहीं दिया। तभी एक व्यक्ति दिखाई दिया। वह मार्ग में लगी काँटेदार झाड़ियों को काट–काटकर परे हटा रहा था। कोतवाल ने रोब से पूछा, ''अरे, तू जानता है कि महात्मा दादू कहाँ रहते हैं?" यह व्यक्ति कार्य में मस्त था, बोला नहीं। कोतवाल क्रुद्ध हो गए। गाली देते हुए बोले, ''मैं तेरे बाप का नौकर नहीं, शहर कोतवाल हूँ। जल्दी बोल!'' उस व्यक्ति ने अब की बार सुना, आश्चर्य से कोतवाल की ओर देखा, धीरे से मुस्कुरा दिया। कोतवाल ने समझा कि यह व्यक्ति ठट्ठा कर रहा है। जिस चाबुक से घोड़े को चला रहे थे, उसी से उस व्यक्ति को पीट डाला। वह व्यक्ति चाबुकें खाता रहा, फिर भी मुस्कुराता रहा। कोतवाल ने उसे जोर से धक्का दिया। वह व्यक्ति पत्थर पर गिरा। उसके सिर से रक्त बहने लगा। कोतवाल जल्दी में थे; उसे वैसे ही छोड़कर आगे चल दिए। कुछ दूरी पर जाकर एक और व्यक्ति दूसरी ओर जाता हुआ मिला। उससे बोले, ''दादू महाराज कहाँ मिलेंगे, तू जानता है?'' उस व्यक्ति ने कहा, ''दादू महाराज तो इसी मार्ग में थे, अभी कुछ देर पूर्व मैं उन्हें देखकर आया हूँ। वे मार्ग में लगी काँटेदार झाड़ियों को काट रहे थे। आपने क्या उन्हें नहीं देखा?'' कोतवाल ने आश्चर्य से कहा, ''वे दादू थे?'' पथिक ने कहा, ''हाँ''। कोतवाल घोड़े को मोड़कर दौड़ते हुए वापस आये। देखा कि दादू ने अपने सिर पर पट्टी बांध ली है। वैसे ही झाड़ियाँ काट रहे हैं जैसे पहले काट रहे थे। कोतवाल शीघ्रता के साथ घोड़े से उतरे, दादू के चरणों में गिर पड़े, रोते हुए बोले, ''मुझे क्षमा कर दो महात्मन्! मैं तो आप ही को खोजता फिरता था। मेरी बुद्धि पर पर्दा पड़ गया, आपको ही पीट डाला।'' दादू हँसते हुए बोले, ''मैं जानता हूँ किस तुम दादू को खोज रहे थे।'' कोतवाल ने कहा, ''मुझे क्षमा कर दीजिये, मुझसे बहुत पाप हो गया!'' दादू जोर से हँस पड़े; बोले, ''कुछ नहीं किया तुमने। एक व्यक्ति एक घड़ा खरीदता है तो उसे भी ठोक–पीटकर देख लेता है।''

यह है पहुँचे हुए की पहचान! उसके पास बैठने से जी न उकताये। उसकी जिह्वा वश में हो और क्रोध न आये। ऐसे व्यक्ति का मन आपके मन को वश में करने में सहायता दे सकता है। इसलिए गुरु वशिष्ठ ने कहा, ''मन को वश में करने का साधन मन है।'' परन्तु यह मन क्या है यह कल बताऊँगा, आज तो समय हो गया।

शेष अगले अंक में....

योग क्या है?

● हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

योग वेद के अनुसार ऋषि पतंजलि का आविष्कार है। **'युज्यतेऽसौ योगः'** जो युक्त करे मिलावे उसे योग कहते हैं।

योग उस विद्या को कहते हैं जो मनुष्यों के अन्तःकरण को इस योग्य बना देवे कि वह स्फुरणों से अनुकूल होता हुआ संसार में हमारे चारों ओर जो असीम संज्ञान व्यवहार हो रहे हैं, उनको बिना किसी मदद के जाने, ग्रहण करे और बचावे।

योग के आठ अंग हैं:– 'यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। योग में प्रवेश के पहले 'यम और नियम' का पालन करना जरूरी होता है।

यम–**अंहिसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहयमाः** (1) अहिंसा, (2) सत्य, (3) अस्तेय (चोरी न करना), (4) ब्रह्मचर्य, (5) अपरिग्रह (न्यायपूर्वक भोग) में पांच यम कहलाते हैं। नियम– **शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानिनियमाः।** (1) शौच, (2) सन्तोष, (3) तप (कष्टों को सहन करना), (4) स्वाध्याय (वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करना) ये पांच नियम हैं। इन यम नियमों के पश्चात् आसन है:–

'स्थिर सुखमासनम्' जिसमें स्थिर सुख हो वह आसन कहलाता है। आसन के अनेक भेद हैं जैसे– सर्वांगासन, भुजंगासन, धनुरासन, उत्तानपादासन, मर्कटासन, पैरों को घुमाना, साइकिल जैसे चलाना आदि और स्पॉण्डिलाइसिस के लिये सात प्रकार के आसन होते हैं। इन सब आसनों में से जिनके करने से आपको लाभ हो उन्हीं को करें। परन्तु इन आसनों से केवल शारीरिक लाभ होता है।

आध्यात्मिक उन्नति के लिये राजयोग में आसन का तात्पर्य है कि योग में स्वस्तिकासन या पद्मासन में से किसी ऐसे आसन में बैठें जिसमें स्थिर रीति से सुख मालूम हो।

प्राणायामः– रेचक, पूरक और कुम्भक प्राणायाम एवं ध्यान के पहले सारे शरीर को शोधन कर लेना चाहिये। उसके लिये 'दीर्घस्वासन' सामर्थ्य के अनुसार 10 बार करें (इससे हृदय की ग्रन्थियाँ शुद्ध हो जाती हैं, पीठ की टूटी हुई हड्डी जुड़ जाती है)। उसके बाद 'कपाल भाति' प्राणायाम 30 से 50 बार (लोहार की धौंकनी की तरह करें) सामर्थ्य के अनुसार (इससे ऊर्जा की वृद्धि, किडनी, पेट और गले को लाभ होता है 'कोलेस्ट्रोल' कम हो जाता है)। उसके पश्चात् 'अनुलोम–विलोम' 15 से 20 बार करें, यह नाड़ी शोधन प्राणायाम है, यह हृदय और मस्तिष्क के लिये उपकारी है, इसके दैनिक अधिक मात्रा में करने से माथे का दर्द नहीं होता, स्वांस रोग के लिये अच्छा है। इन क्रियाओं के पश्चात् प्राणायाम करें। **'तस्मिन्सति स्वांस प्रस्वांस योर्ग तिविच्छेदः प्राणायामः** (योग, साधनपाद) भीतर की वायु को बाहर निकालना। इनकी गति को रोक देना अर्थात् न स्वांस भीतर लें और न बाहर निकालें, प्राणायाम कहलाता है।

'प्रच्छर्दनविधारणाभ्यं वा प्राणस्य' (योगसमाधिपादे सू. 34)

प्राणायाम करने वालों को चाहिये कि सुखासन, पद्मासन, सिद्धासन या स्वस्तिकासन की स्थिति में बैठें। पीठ, ग्रीवा और शिर को सीधा रखें, दोनों हाथों को दोनों जानुओं पर रखें, इधर–उधर दृष्टि न रखकर भीतर की वायु को बाहर फेंकते समय मलद्वार संकोचन ऊपर की ओर। पेट और नाभि प्रदेश की ओर खींचने का प्रयत्न करें, जिससे मूलेन्द्रिय का आकर्षण ऊपर की ओर हो सके। इस क्रिया से उर्ध्वरेतस् स्थिति उत्तरोत्तर सम्पन्न एवं दृढ़ होती है। जब श्वांस भीतर आना चाहे तो शनैः शनैः भीतर लेते हुए नाभि के अन्दर के आकर्षण को शिथिल करता जावे। परन्तु मूलेन्द्रि को आकर्षित किये रखे जिससे मूलबन्ध लगा ही रहे। जब वायु भीतर न रुके तो उसे वेग से बाहर निकाल दे। पुनः इसी तरह तीन प्राणायाम करें। यह रेचक बा कुम्भक अर्थात 'बाह्य वृत्ति प्रथम प्राणायाम है। शेष तीन प्रकार के प्राणायाम, 'योगदर्शन में आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम की बाह्यभ्यन्तर दूसरी स्थिति है। तीसरी स्तम्भवृत्ति और चौथी बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी है।

बाहर प्राण रोकने के पश्चात् भीतर आना चाहे तो धीमे–धीमे में उसे भीतर लेकर–लेकर ही रोकना 'आभ्यन्तर वृत्ति है। 'बाह्यवृत्ति' बाहर ही रोकना। तीसरी स्थिति स्तम्भ वृत्ति की है अर्थात् जिस भी स्थिति में प्राण है उसको उसी स्थिति में रोके रखना, न भीतर स्वांस लेना और न बाहर छोड़ना। चतुर्थ वृत्ति जो बाह्यभ्यन्तर विषयाक्षेपी है, उसमें जब प्राण भीतर जाना चाहे तो उसे बार–बार, बाहर ही धकेल देना या रोकना, और जब बाहर प्राण निकलना चाहे तो उसे बार–बार भीतर ढकेलने की क्रिया करने से सम्पन्न होता है।

इस प्रकार प्राणायाओं की स्थिति उत्तरोत्तर द्वढ़ होने से इन्द्रियों के दोष दूर हो जाते हैं, शरीर की नस–नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती है और 'ततःक्षीयते प्रकाशावरणम्। (योग दर्शन, श,52) के अनुसार ज्ञान का प्रकाश होता है तथा अविद्या अज्ञान का नाश होता है।

योगाभ्यासियों को चाहिये कि सर्वप्रथम 'बाह्यवृत्ति' प्राणायाम का अभाव करें– जैसे कि पहले लिखा है। उसके सिद्ध होने से अन्य सभी प्राणायाम स्वतः सिद्ध होने लगते हैं।

सिद्धि का कारण निम्न प्रकार है:– सन्ध्योपासना– योगाभ्यास के समय जब प्राणायाम करें तब गुरु आज्ञानुसार सप्तमहाव्याहृतियों– ओम् भूः, ओम भुवः, ओम् स्वः, ओम् महः, ओम् जनः, ओम् तपः, ओम् सत्यम्' का जप करते हुए जिस समय स्वांस निकालें अथवा अंदर लें उस समय उनका अर्थ सहित भावना करें और ध्यान को हृदय अथवा भृकुटी में स्थिर करें। उसके पश्चात बिना प्राणायाम के उसी अवस्था में जब 'ओम प्रणव का जप करें तो यह भावना करें कि उसी से हमें प्राण और जीवन प्राप्त हो रहा है। अथवा वही प्राणाधार सबका जीवन दाता है, वही सर्वदुःख नाशक और आनन्द दाता है। योग के आठ अंग होते हैं, जिनमें से चार अंगों का वर्णन हो चुका है। पांचवां प्रत्याहार है।

'स्वविषया सम्प्रयोगोचित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः' (पातंजलसू 2,54) भाव से प्रत्याहार का अर्थ है पीछे हटना, विषयों से विमुख होना यमनियम, प्राणायामादि के प्रभाव से चित्त जब बाहर के विषयों से विरक्त होकर समाहित होने लगता है, तब इन्द्रियाँ भी अर्न्तमुख होकर उस (चित्त) जैसा अनुकरण करने लगती हैं, और चित्त के निरुद्ध होने पर स्वयं भी निरुद्ध हो जाती हैं। यही उनका प्रत्याहार है।

'धारणा':– **'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'** (योगसाधन) जिस स्थान पर वृत्ति को ठहराया जाय, वह नाभि; हृदय कमल, नासिका का अग्रभाग, भृकुटी, ब्रह्मरन्ध्र आदि आध्यात्मिक देश रूप विषय है। इसी को ध्येय कहते हैं जिसमें ध्यान लगाया जाता है। 'बन्ध' ध्यान के समय अन्य विषयों से हटकर चित्त को एक ही ध्येय विषय पर वृत्ति मात्र से ठहराना है। तात्पर्य यह कि– प्राणायाम के माध्यम से हो अथवा जप के माध्यम से **'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः'** (योगदर्शन) चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम ही योग है। सातवाँ अंग ध्यान है–**'तत्र प्रत्ययैकतानताध्यानम्'** (साधनपाद) उस (धारणा) में प्रत्यय (ज्ञान) का एक सा बना रहना ध्यान का कहा जाता है।

व्याख्या– देश विशेष (नाभिचक्रादि) में चित्त का ठहराना धारणा कहा गया है। यह चित्त का ठहराव जब स्थित हो जावे और ध्येय का ज्ञान एक जैसा बना रहे और दूसरी किसी प्रकार का ज्ञान चित्त में न आवे तो इस अवस्था को ध्यान कहा जाता है।

योगमें–यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार में पांच योग के बहिरंग साधन हैं और धारणा, ध्यान, समाधि अंतरंग साधन हैं।

'समाधि'– **'तत्रर्थमादेवानिर्भासंस्वरूप –शून्यमिव समाधिः।'** (प. विभूतिपाद)

महात्मा नारायण स्वामी 'योगरहस्य' में लिखते हैं कि 'ध्यान और समाधि में अन्तर यह है कि– ध्यान में ध्याता, ध्यान और ध्येय' इन तीनों का ज्ञान योगी का रहता है परन्तु समाधि में अर्थ (ध्येय) मात्र का प्रकाश रह जाता है। ध्याता और ध्यान न रहते हों यह नहीं होता। ये रहते अवश्य हैं। इस आवेश का फल यह होता है कि ध्याता को अपनी सुध–बुध नहीं रहती और वह केवल ध्येय ईश्वर के ही आनन्द के प्रकाश में निमग्न और तल्लीन सा हो जाता है।

प्रश्न– योग–ध्यान में चंचल मन को एकाग्र कैसे करें?

उत्तर– हृदय अथवा भृकुटी में स्व स्वरूप के साथ अपने चित्त को सब चिन्ताओं को त्यागकर **(सर्वेचिन्तापरित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते)** केवल एक ओम् प्राणाधार पर एकाग्र करें। अथवा ॐ को भृकुटि में लिखा करें। यदि ऐसा न हो तो ईश्वर को सर्वाधार समझते हुए जय करें। गायत्री मंत्र का भी जप कर सकते हैं, मंत्र अधिक लगे तो केवल 'ओम् सत्यम्' का जप करें क्योंकि उसमें प्रकाश छिपा रहता है, जो बार–बार जप के घर्षण से उसका उदय होने लगता है। तात्पर्य यह है कि प्रत्याहार, धारणा और ध्यान का जो विषय है उन सबका एक ही उद्देश्य है कि जब तक उस प्राणाधार परमेश्वर के प्रति एक मन के साथ प्रेम और श्रद्धा उत्पन्न नहीं होता तब तक योगाभ्यासी का मन ध्यान में स्थिर नहीं होता।

प्रश्न–बिना चित्त की एकाग्रता के योगाभ्यासी का योग सिद्ध क्यों नहीं होता?

उत्तर– जैसे कोई सर्वदेशी वस्तु हिल नहीं सकती। इसी प्रकार सर्वत्रपूर्ण ईश्वर की कोई गति नहीं होती। इसलिए जो सबके अन्तःकरण में विद्यमान है, उसी को लक्ष्य में रखते हुए उसी प्रकार का गतिशून्य परमात्मा के ध्यान में अपने (मन) को चंचल रहित करना है। **"तस्य वाचकः प्रणवः"** (योगदर्शन) उस ईश्वर – वाच्य का वाचक नाम ओम् प्रणव है। यदि मनुष्य प्राणायाम के साथ स्थिर आसन होकर नित्य प्रातः आधा घन्टा श्रद्धापूर्वक ओम् प्राणों का प्राण, सर्वदुःखनाशक, सर्वसुखदाता है, का जप करें तो उसका चित्त एकाग्र होने लगता है।

चित्त को स्थिर करने का प्राणायाम की रेचक और बाह्य कुम्भक क्रियायें हैं, अर्थात् प्राण को बलपूर्वक बाहर निकाल कर कुम्भक अर्थात् उसे रोक रखे, जप के साथ भृकुटी में ध्यान को लगाये रखें। जब प्राण अन्दर लेना चाहें तो धीरे–धीरे लेकर पुनरपि ऐसा ही तीन बार करें, इन क्रियाओं से प्राण वश में होता है, बुद्धि तीव्र और सूक्ष्म हो जाती है, मन का मैल साफ हो जाता है, प्राण दीर्घ और सूक्ष्म होने लगता है।

प्राण के वश में होने से चित्त भी स्थिर होने लगता है। जब किसी शरीर के चक्र हृदय अथवा भृकुटी आदि में अन्तर मन की दृष्टि को प्राणायाम या जप के माध्यम से स्थिर किया जाता है और जब मन उस स्थान में स्थिर होने लगता है, तब प्राण भी स्थिर होने लगता है। क्योंकि प्राण से मन का और मन से प्राण का अटूट सम्बन्ध है। अतः चित्त के ध्यान में देर तक रुकने से जब प्राण रुकने लगता है तो दोनों के एक होने से ईश्वरीय प्रकाश के साथ एक अलग प्रकार का आनन्द का बोध होता है। किन्तु उस अवस्था में जहाँ न मन विचलित हुआ कि प्राण की क्रिया भी स्वाभाविक होने लगता है और योगाभ्यासी माया में आ जाता है। अभ्यासी को चाहिये कि ध्यानादि के पश्चात् पांच बार भ्रामरी अवश्य कर लें। (इससे तनाव कम हो जाता है)

मु0 पो0 मुरारई,
जिला वीरभूम (प0 बंगाल)
731219, मो0 : 8158078011,

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका– क्या हजारों वैज्ञानिकों की तुलना में एक ब्रह्मवेत्ता द्वारा संसार का उपकार अधिक होता है?

समाधान– हाँ बिल्कुल अधिक होता है। ये सैकड़ों वैज्ञानिक मिलकर विज्ञान के अविष्कार तो कर देंगे और अच्छी चीजें भी बनायेंगे, बना भी रहे हैं। इन्होंने बड़ा अच्छा परिश्रम किया, हम इनकी प्रशंसा करते हैं। लेकिन जो मनुष्य की मूल आवश्यकता है, उसकी पूर्ति वैज्ञानिक लोग नहीं कर सकते। ये रेडियो बना देंगे, टेलीवीजन बना देंगे, सैटेलाइट बना देंगे, कम्प्यूटर बना देंगे, मोबाइल फोन बना देंगे, सारी सुविधा दिला देंगे, पर व्यक्ति को इससे आगे शांति भी चाहिये। वो शांति ये नहीं दिला सकते। वो इनके बस की बात नही हैं। हजारों वैज्ञानिक भी मिलकर के मनुष्य की अंतिम इच्छा को पूर्ण नहीं कर सकते लेकिन एक ब्रह्मवेत्ता कर सकता है। वो लोगों को शांति दिला सकता है। उसके पास समाधान है। जैसे एक विद्यार्थी गया था काकरिया तालाब में डूबने के लिये, तो एक वृद्ध व्यक्ति ने उसको समझा दिया न, और उसको समझ में आ गई बात। फिर उसने मरना कैन्सिल कर दिया। तो ऐसे ही एक ब्रह्मवेत्ता लोगों की आखिरी इच्छा पूर्ण कर सकता है।

जब एक व्यक्ति के पास शांति नहीं है, तब–तक उसके पास सारे साधन होते हुए भी उसका जीवन व्यर्थ है। वेद आदि शास्त्र, ऋषि मुनि लोग इस बात को मानते हैं, कि यदि आपके पास शांति है, तो सब कुछ है। और शांति नहीं है, तो कुछ भी नहीं है। भौतिक साधन कितने भी हों, उससे आपका जीवन संतुष्ट नहीं होगा, तृप्त नहीं होगा। और फिर अन्त में लोगों को वही समाधान दिखता है– जापान वाला। आत्महत्या कैसे करें?

शंका– क्या व्यक्ति को बुरे कर्म करने के पश्चात् अन्य सभी योनियों को भोगना पड़ेगा अथवा कुछ योनियों के पश्चात् वापस मानव जन्म मिलेगा?

समाधान– एक व्यक्ति ने 20 हजार रुपये की चोरी की, दूसरे व्यक्ति ने दो अरब रुपये की चोरी की। चोरी दोनों ने की, इसलिए दोनों अपराधी हैं। निःसंदेह दोनों को दण्ड मिलेगा।

क्या दण्ड की मात्रा दोनों की समान रहेगी, या कम–अधिक? दण्ड की मात्रा कम–अधिक होगी। क्योंकि दोनों को बराबर दण्ड दिया जाये, तो यह न्याय थोड़े ही होगा, यह तो अन्याय होगा। एक ने अपराध थोड़ा किया, तो उसको थोड़ा दण्ड। और एक ने अधिक अपराध किया, तो उसको अधिक दण्ड, यह न्याय है। किसी ने 20

हजार पाप किये, किसी ने 50 हजार पाप किये। और दोनों को ही 84 लाख योनियों में डाल दें, तो फिर यह न्याय कहां होगा? जिसने जितना अपराध किया, उतनी ही योनियों में जायेगा, दण्ड भोगेगा, धक्का खायेगा और लौटकर वापस मनुष्य बनेगा। जिसने थोड़ा अपराध किया, वह थोड़ी योनियों में धक्का खायेगा। जिसने ज्यादा अपराध किये, वह ज्यादा योनियों में जायेगा। इसलिए सब को 84 लाख योनियों में नहीं जाना। यही न्याय है।

दर्शन योग महाविद्यालय
रोजड़ (गुजरात)

राजनीति का धर्म से सम्बन्ध

● कृपाल सिंह वर्मा

1. राजनीति तथा धर्म में कोई अन्तर नहीं है। राजधर्म को ही राजनीति कहते हैं। चार वर्ण हैं ये हमेशा से हैं तथा हमेशा रहेंगे। ये हैं–(1) ब्राह्मण, (2) क्षत्रिय, (3) वैश्य एवं (4) शूद्र।

ये वर्ण कर्म के आधार पर हैं, जन्म के आधार पर नहीं।

(i) जो व्यक्ति पढ़ने–पढ़ाने का कार्य करते हैं उन्हें ब्राह्मण कहते हैं।

(ii) जो व्यक्ति देश की रक्षा का कार्य करते हैं, देश की सेवा का कार्य करते हैं उन्हें क्षत्रिय कहते हैं।

(iii) जो व्यक्ति कृषि, व्यापार आदि करते हैं उन्हें वैश्य कहते हैं।

(iv) जो व्यक्ति बिना पढ़े लिखे हैं वे इन ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य की सेवा का कार्य करते हैं उन्हें शूद्र कहते हैं।

यदि किसी परिवार मे चार लड़के हैं। उनमें से एक पढ़ने–पढ़ाने का कार्य करता है, दूसरा देश की रक्षा करने वाला सैनिक है। तीसरा कृषि तथा व्यापार करता है। चौथा अनपढ़ रह गया। वह पूरे परिवार की सेवा करता है तो समझिये उस परिवार में चारों वर्ण मौजूद हैं।

2. जिस प्रकार ब्राह्मण के कर्त्तव्यों को ब्राह्मण धर्म कहते हैं। क्षत्रियों के कर्त्तव्यों को क्षात्र धर्म कहते हैं। वैश्यों के कर्त्तव्यों को वैश्य धर्म कहते हैं। शूद्र के कर्त्तव्यों को शूद्र धर्म कहते हैं, इसी प्रकार राजधर्म को राजनीति कहते हैं। जिस प्रकार रोपे गये पौधे के चारों ओर काटों की बाढ़ लगा देते हैं। इसी प्रकार शत्रुओं से देश को बचाने के लिए राजनीति की बाढ़ लगा दी जाती है।

3. ब्राह्मण सर्वोच्च वर्ण है। सबसे ऊंचे आसन पर विराजमान होता है। परन्तु राजसूय यज्ञ में राजा का आसन ब्राह्मण से ऊपर होता है। जिसका अर्थ है कि संकट काल में ब्राह्मण भी राजा के आदेशों का ही पालन करेगा।

4. राजधर्म अत्यन्त महत्वपूर्ण है। महाराज मनु ने मनुस्मृति में, महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में अलग से राजधर्म का व्याख्यान किया है।

5. ब्राह्मण ज्ञान से बड़ा होता है। क्षत्रिय बल से बड़ा होता है। वैश्य धन से बड़ा होता है तथा शूद्र आयु से ही बड़ा होता है।

6. ब्राह्मण ज्ञान प्रदान करके समाज की रक्षा करता है। क्षत्रिय बल का प्रयोग करके देश की रक्षा करता। वैश्य धन देकर देश की रक्षा करता है तथा शूद्र सब की सेवा करके देश–समाज की रक्षा करता है।

7. **सन्यास धर्म तथा राजधर्म में अन्तर :**

ब्राह्मण धर्म तथा राजा के धर्म में बड़ा भारी अन्तर होता है।

(i) सन्तोषी राजा तथा असन्तोषी ब्राह्मण दोनों ही नष्ट हो जाते हैं।

''सन्तोषी राजा, विनश्यति।
असन्तोषी ब्राह्मण विनश्यति।।''

यदि राजा देश की सीमाओं से सन्तुष्ट हो गया तो पड़ोसी राजा अपनी सीमाओं का विस्तार कर लेता है। तिब्बत लेने के बाद भी चीन सन्तुष्ट नहीं हुआ। 1962 में भारत पर आक्रमण किया। यदि ब्राह्मण सन्तुष्ट नहीं है। तो धन के लालच में वह वैश्य बन जाता है।

(ii) क्षमा का गुण ब्राह्मण के लिए वरदान है परन्तु राजा के लिए अभिशाप है। राजा का कर्तव्य है कि अपराधी को उचित दण्ड देकर दण्डित करे। क्षमा न करे। अपराधी को दण्ड न मिलने से अपराध बढ़ते हैं। लेकिन क्षमा का गुण ब्राह्मण का आभूषण होता है। महर्षि दयानन्द ने विष देने वाले को भी क्षमा कर दिया था।

(iii) अहिंसा ब्राह्मण का धर्म है, राजा का धर्म नहीं। आचार्य चाणक्य ने कहा है कि दण्ड ही राज्य को चलाता है। यदि घोर अपराधियों को राजा मृत्यु की सजा न दे तो अपराध इतने बढ़ जायेंगे कि हाहाकार मच जायेगा। लेकिन ब्राह्मण वैर भाव छोड़ के सब प्राणियों के कल्याण का ही उपदेश करता है।

इस प्रकार राजनीति धर्म का ही एक पक्ष है।

253, शिवलोक, कंकरखेड़ा
मेरठ–9927887788

आर्य दैनन्दिनी-2016 (डायरी)

आर्य प्रकाश दिल्ली के श्री संजीव आर्य द्वारा प्राप्त पत्र के अनुसार आर्य प्रकाशन हर वर्ष आर्य दैनन्दिनी का प्राकशन करता है जिसमें संन्यासी विद्वान, विदुषी, भजनोपदेक तथा गुरुकुलों के नाम तथा दूरभाष नम्बर प्रकाशित किये जाते हैं। सम्बन्धित महानुभावों से निवेदन है कि अपने पते एवं दूरभाष 15 सितम्बर 2015 तक ईमेल aryaprakashan@gmail.com अथवा एसएमएस, डाक द्वारा आर्य प्रकाशन, अजमेरी गेट, दिल्ली – 110006 मो. नं. 09868244958 पर भेजें।

कर्म फल सिद्धांत

● डॉ. सुशील वर्मा

**न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममान एति।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत्पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति।।** अथर्व 12/3/48

अन्वयः – अत्र किल्बिषं न। न आधार अस्ति। न यत् मित्रैः सममान एति। न एतत् अनूनं पात्रं निहितं। पक्तारं पक्वः पुनः आविशति।

1. अत्र किल्बिष न – यहाँ उस परमपिता परमात्मा की न्याय व्यवस्था में कोई दोष अथवा त्रुटि नहीं।
2. न आधारः अस्ति – न ही कोई सहारा है अथवा न ही कोई सिफारिश है।
3. न यत् मित्रैः सममान एति – न ही कोई ऐसा उपाय है जिससे मित्रों के साथ चलकर पहुँचा जा सके।
4. न एतत् अनूनं पात्रं निहितं – हमारे द्वारा कर्मों से कमाया हुआ यह पात्र पूरे का पूरा है, जिसमें कुछ घटा अथवा बढ़ा नहीं। ऐसा वह पात्र पूर्ण रूपेण सुरक्षित रखा हुआ है।
5. पक्तारं पक्वः पुनः आ विशति – पकाने वाले को पकी हुई वस्तु फिर से भली प्रकार मिल जाती है।

अथर्ववेद का यह मन्त्र कर्म फल को पूर्णतया प्रतिपादित करता है। गीता का जब यह प्रसिद्ध श्लोक पढ़ते हैं

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'' गीता 2/47

तो यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारा कर्म करने का अधिकार है फल के विषय में सोचने की आवश्यकता नहीं। परन्तु मनुष्य तो ऐसा प्राणी है जो प्रत्येक कार्य उसके फल प्राप्ति अनुसार ही करता है। एक शंका बनी रहती है इस कार्य का परिणाम कैसा रहेगा? यही प्रश्न उसके लिए कार्य का हेतु है। प्रत्युत्तर में वेद का यह पावन मन्त्र उसे विश्वास दिलाता है कि तेरा किया हुआ कर्म यूँ ही व्यर्थ नही जाएगा। अवश्यमेव इस का परिणाम तुम्हें प्राप्त होगा।

इस प्रस्तुत मन्त्र ने तो पूरी की पूरी गुत्थी ही खोल कर रख दी कि मनुष्य द्वारा किया गया कर्म उसके परिणाम को स्वतः ही प्रकट कर देता है। मन्त्र का एक एक पद उस द्वारा किए कर्म की आशंकित परिणाम की पूरी व्याख्या कर रहा है। क्योंकि वह परमात्मा न्यायकारी है। उसकी न्याय व्यवस्था में लेष मात्र भी त्रुटि नहीं। हम ही हैं जो अज्ञानता के कारण उसे कोसते रहते हैं। अपने दोषों को उस पर ही मढ़ देते हैं। हर बुरे परिणाम के लिए उसे जिम्मेवार ठहराते हैं और अच्छे का श्रेय स्वयं के लिए चुनते हैं। मानो कि हर बुरे काम के लिए उसे ही निर्धारित किया गया है। ज्ञातव्य है कि परमात्मा के पास केवल मात्र सुख ही सुख है। वह सुख प्रदाता है दुःख तो हमारे ही कर्मो का फल है।

''स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।'' अथर्व 10/23/1

वेद का तो आदेश है कि लोक में सुख और शान्ति तथा परलोक में निःश्रेयस श्रेष्ठतम कर्मो से ही प्राप्त हो सकते हैं अन्यथा नहीं। यदि हमारा उस परमसत्ता पर पूर्णतया विश्वास है, श्रद्धा है, निष्ठा है, दृढ़ निश्चय है, उसकी न्यायव्यवस्था में आस्था है। महाभारत के कथन को उचित एवं न्यायसंगत मानते हैं कि ''अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतं कर्म शुभाशुभम'' तब हमें निम्नलिखित लाभ प्राप्त होंगे।

संकट में व्यथारहित होनाः– परमात्मा के न्याय को स्वीकार्य मानते हुए यह निश्चय रहेगा कि जो कष्ट मेरे ऊपर आए हैं वे मेरे ही दुष्कर्मो का फल है। मैं इसे भोगकर ही कष्टों से छुटकारा पाऊँगा। परिणामतः मनुष्य व्यथारहित होकर उन संकटों को सहने का सामर्थ्य प्राप्त करता है।

दृढ़ विश्वासी– डर से तब तक नहीं डरना चाहिए जब तक वह आ न जाए। मरने से पहले ही क्यों मरा जाए। इस मन्त्र के समझ में आ जाने पर तो यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि परमात्मा की न्यायव्यवस्था बहुत ही सुस्पष्ट एवं सुव्यवस्थित है; हमारे कर्मो का फल अवश्यमेव हमें भुगतना होगा। यहाँ पर यदि चाणक्य को याद करेंगे तो वही उपदेश प्राप्त होगा–

**यथाधेनुसहस्रेषु वत्सो गच्छति मातरम्।
तथा यच्च कृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति।।** चाणक्य नीति 13/14

हमें विश्वास हो जाता है कि जो हमें मिलता है वह अपने कर्मो के आधार पर ही मिलता है। फिर यह कहाँ की ईमानदारी है कि प्रभु से सुख समृद्धि की ही प्रार्थना करें। प्रार्थना तो यह करनी चाहिए कि मुझ से अज्ञान और दुर्बलतावश जो पाप हुआ है मैं उसका फल तुझसे माँगता हूँ ताकि मेरा वह बोझ शीघ्र उतर जाए। इस प्रकार दुःख से निर्भय रहने का लाभ प्राप्त होगा।

दुष्कर्मो का परित्यागः– उपरोक्त विचार से दुष्कर्मो के परित्याग की भावना जागृत होगी। क्योंकि संसार के समस्त पाप सुख प्राप्ति के लिए ही किए जाते हैं, दुःख के लिए नहीं। इस प्रकार दुष्कर्मो को त्याग कर पापों से मुक्ति मिलेगी। वैसे भी जीवन का लक्ष्य मुक्ति ही है जिसके लिए शुभ कर्म ही एक मात्र रास्ता है। वही सुपथ है जिसके लिए हमने अग्रसर होना है।

अन्ततः हम सभी इस निष्कर्म पर पहुँचते हैं कि वह परमात्मा न्यायकारी है और उसकी न्यायव्यवस्था में कोई त्रुटि नहीं है उसके यहाँ कोई शिफारिश नहीं चलती। उसके न्यायकर्म में किसी पीर–पैगम्बर, गुरु, तथाकथित बाबाओं की सिफारिश की कोई गुन्जाइश नहीं है। इस तथ्य को केवल मात्र वेद ही कह सकता है। न तो ईसाइयत ही इसे कह सकती है, न ही इस्लाम, और तो और पौराणिक पद्धति में इतना साहस नहीं क्योंकि उनका तो मानना है कि ईसा मसीह के सामने गुनाह स्वीकार कर लो, कलमें पढ़ लो, प्रार्थना से, तीर्थ स्थानों में स्नान करने से शरीर को कष्ट देने वाली क्रियाओं में पापों से छुटकारा मिल जाएगा। यही प्रवृत्ति उन्हें नई बुराई करने की और धकेल देती है क्योंकि पुराने पाप तो उन्होंने माफ करवा ही लिए।

**फलं धर्मस्य नेच्छन्ति धर्मं नेच्छन्ति मानवाः।
फलं पापस्य नेच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः।।**

प्रायः मानव धर्म फल अथवा सुख की इच्छा तो करते हैं किन्तु धर्म का आचरण कोई नहीं करना चाहता। इसी प्रकार पाप फल अर्थात् दुःख को कोई नहीं चाहता किन्तु पाप पूरी शक्ति से करता है क्योंकि पहले के पापों के छुटकारे के प्रति वे आश्वस्त कर दिए गए होते हैं।

दूसरे चरण में कहा गया कि आप के साथ कोई मित्र अथवा सम्बन्धी आपके कर्म फल में साथ नहीं देगा। यहाँ यह स्पष्ट है कि किसी भी दूसरे का कार्य अथवा किया हुआ कर्म आपके काम न आ सकेगा। यह भ्रान्ति मध्यकाल में बहुत प्रबल रही, अभी भी यह विश्वास कम तो नहीं हुआ। दूसरों से विघ्न निवारण व दुःख दूर करने हेतु जप करवाए जाते हैं, माला फिरवाई जाती है। तीर्थ यात्रा कोई अन्य कर आए बस केवल मात्र उसके हाथ लगा दो, उसके चरणों को स्पर्श कर दो, तुम्हें फल प्राप्त हो जाएगा। कैसे कैसे उपाय बताए जाते हैं। मृत्यु पर भी विजय प्राप्ति के लिए, अच्छे स्वास्थ्य की कामना के लिए महामृत्युञ्जय जाप किये जाते हैं। विडम्बना तो इस बात की है हमारे आर्य समाजों में भी स्वास्थ्य लाभ के नाम पर 21, 31, 51 अथवा 101 बार मृत्युञ्जय मन्त्र के जाप किये जाते हैं, आहुतियाँ दिलवाई जाती हैं। इस अवैदिक कर्म के खण्डन के लिए नहीं अपितु उस का मण्डन किया जाता है। तर्क यह दिया जाता है कि यह भी वेद मन्त्र है इसलिए इस मन्त्र में आहुतियाँ देने में क्या गलत है। स्वामी दयानन्द जी ने तो इस मन्त्र का न तो कोई महात्म्य प्रकट किया और न ही किसी यज्ञ में, न ही किसी संस्कार में, इसे सम्मिलित किया, न ही इससे किसी जप की चर्चा की।

आओ वेद के आदेश को स्वीकार करें और उस के न्याय कर्म के अनुसार बुरे कर्मो को त्याग अच्छे कर्मो की ओर अग्रसर होवें। आप ही एकमात्र प्राणी हैं जिसे अपने कर्मो का फल प्राप्त होगा। एक धर्म ही इस प्रकार का मित्र है जो मृत्यु के बाद भी आपका साथ देता है अन्य सभी शरीर के साथ नष्ट हो जाते हैं।

**एक एव सुहृद्धर्मो निधने ऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति।।** मनु 8/17

इसी सन्दर्भ में यह भी कहना उचित होगा कि प्रायः हम सोचते हैं कि हमारे किए कर्मो को कौन देखता है? दुनिया में असंख्य प्राणी हैं, हमारे कर्मो का कौन हिसाब किताब रखता है? यह विचार तो हमें डराने के लिए ही है। परन्तु इस शंका का समाधान अथर्ववेद का मन्त्र करता है जिसका अर्थ कि जितनी बार मनुष्य की आँख झपकती है प्रभु के ज्ञान में उसका पूरा–पूरा हिसाब है।

"संख्याता अस्य निमिषो जनानाम" अथर्व 4/16/5

अथर्ववेद तो यहाँ तक कहता है कि यदि किसी बन्द कमरे में दो व्यक्ति वार्तालाप कर रहे होते हैं और विचार करते हैं कि तीसरा यहाँ कोई नहीं जो उनकी बात को सुन रहा है तो वे निश्चय जाने कि वहाँ वरुण (न्याय का देवता) उपस्थित है।

**यस्तिष्ठति चरति यश्चवञ्चति यो निलायं चरति प्रतङ्कम्।
द्वौ संनिषध यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः।।**

अन्त में मन्त्र कहता है कि वह पात्र अर्थात् वह कर्म जो अपने किए हैं उनका फल अथवा परिणाम सुरक्षित है। उसमें कोई परिवर्तन सम्भव नहीं। न उस परिणाम में कुछ घटाया जा सकता है और न ही बढ़ाया जा सकता है। जैसा आपने पकाया था वैसा ही पका पकाया आपको प्राप्त हो जाएगा। अर्थात् जैसे बीज बोए थे फल तो उसी के ही अनुरूप होंगे। अच्छे कर्मो का फल अच्छा, बुरे कर्मो का बुरा। इसलिए परमात्मा से यही प्रार्थना करनी चाहिए कि हमें सुमार्ग पर चलने की प्रेरणा दें ताकि हमारी जीवन यात्रा सुकर्मो वाली हो।

दिनांक 13.07.2015

गली मास्टर मूल चंद वर्मा
फाजिलका–152123 (पंजाब)

इस प्रस्तुत मन्त्र ने तो पूरी की पूरी गुत्थी ही खोल कर रख दी कि मनुष्य द्वारा किया गया कर्म उसके परिणाम को स्वतः ही प्रकट कर देता है। मन्त्र का एक एक पद उस द्वारा किए कर्म की आशंकित परिणाम की पूरी व्याख्या कर रहा है। क्योंकि वह परमात्मा न्यायकारी है। उसकी न्याय व्यवस्था में लेष मात्र भी त्रुटि नहीं। हम ही हैं जो अज्ञानता के कारण उसे कोसते रहते हैं। अपने दोषों को उस पर ही मढ़ देते हैं। हर बुरे परिणाम के लिए उसे जिम्मेवार ठहराते हैं और अच्छे का श्रेय स्वयं के लिए चुनते हैं। मानो कि हर बुरे काम के लिए उसे ही निर्धारित किया गया है। ज्ञातव्य है कि परमात्मा के पास केवल मात्र सुख ही सुख है। वह सुख प्रदाता है दुःख तो हमारे ही कर्मो का फल है।

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी–श्रीकृष्ण जी

● महात्मा चैतन्यमुनि

संसार के इतिहास में अनेकों ही महापुरुष हुए हैं मगर योगेश्वर श्रीकृष्ण जैसा बहुआयामी व्यक्तित्व कहीं भी दिखाई नहीं देता है। यही कारण है कि श्रीकृष्ण जी न केवल भारतवर्ष में बल्कि समूचे विश्व में पूजनीय व आदरणीय हैं। वे आप्त पुरुष थे, जनक्रान्ति के अग्रदूत थे, परमात्मा के अनन्य भक्त तथा महान् योगी थे, निर्भीक थे, त्यागी और तपस्वी थे, उनका व्यक्तित्व शालीनता से परिपूर्ण था, मैत्री भाव उनमें कूट–कूट कर भरा हुआ था, वे अद्भुत नीतिवान, सदाचारी, निर्लोभी, नैतिकता से ओत–प्रोत तथा बलवान–योद्धा एवं युगपुरुष थे। महाभारत युद्ध को रोकने का उन्होंने भरसक प्रयास किया मगर दुर्योधन की कुटिलता व हठधर्मिता के कारण वे उसमें सफल नहीं हो सके। जब युद्ध अनिवार्य हो गया तो धर्म की विजय तथा अधर्मियों का नाश करने के लिए वे कटिबद्ध हो गए। युद्ध की पूरी तैयारियाँ हो गईं तथा जब दोनों सेनाएं कुरुक्षेत्र के मैदान में आमने–सामने खड़ी हो गईं तो उनके सामने एक बहुत ही विकट स्थिति आ उपस्थित हुई। पाण्डव पक्ष का अतुलनीय वीर अर्जुन मोहग्रस्त होकर युद्ध से ही उपराम हो गया। अर्जुन श्रीकृष्ण जी को तर्क देता है कि वह इन अपनों की हत्या नहीं करेगा, उसे भीख मांगकर निर्वाह करना स्वीकार्य है, यदि उस शस्त्ररहित को कौरव पक्ष वाले मार भी दें तो भी वह प्रतिकार नहीं करेगा, हे केशव! युद्ध के लिए तत्पर इन अपने ही बन्धु–बान्धवों को देखकर मेरा मुँह सूख रहा है, मैं पसीना–पसीना हो रहा हूँ, मेरे हाथ से गाण्डीव छूट रहा है.... ऐसा कहकर अर्जुन अपने गाण्डीव को एक ओर रख कर रथ के पिछले भाग में जाकर बैठ जाता है। अर्जुन उस युद्ध की एक बहुत ही अधिक महत्वपूर्ण कड़ी था, उसकी ऐसी अवस्था देखकर महाभारत युद्ध के सूत्रधार श्रीकृष्ण महाराज जी की अपनी स्थिति कैसी रही होगी इसकी कल्पना करना कठिन नहीं है। ऐसी विकट परिस्थिति में भी योगीराज विचलित नहीं हुए तथा अर्जुन को गीता के रूप में ऐसा अद्भुत् उपदेश दिया कि अर्जुन मोहरहित होकर युद्ध के लिए कटिबद्ध हो गया। गीता का यह ज्ञान आज भी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विमोहित व्यक्ति का संजीवनी बनकर अपना कार्य कर रहा है। गीता का निष्काम कर्म वास्तव में ही एक अद्भुत तकनीक है जिसके कार्यान्वयन से व्यक्ति अपने इहलोक तथा परलोक को सहजता से संवार सकता है।

ऐसे महान पराक्रमी, ईश्वर–भक्त तथा आत्मवेत्ता के बारे में जब कुछ लोग अनेक प्रकार के आक्षेप लगाते हैं तो अत्यधिक दुःख एवं आश्चर्य होता है। क्या इस प्रकार के नीतिवान, बलवान, योगी तथा सर्वगुण सम्पन्न व्यक्तित्व को माखनचोर, गोपियों के साथ रंगरेलियाँ करने वाला, उन्हें नग्न देखने के लिए उनके वस्त्र चुराने वाला, राधा तथा कुब्जा आदि अन्य अनेक महिलाओं का चरित्र हनन करने वाला, कामी तथा शठी आदि कहना युक्तियुक्त है? यदि श्रीकृष्ण जी वास्तव में ही ऐसे थे तो फिर उनका कीर्तन करके हम अपनी सन्तान को क्या शिक्षा देना चाहते हैं? क्या इस प्रकार से अपने महापुरुषों को अपमानित करना श्रेयष्कर है? वास्तव में श्रीकृष्ण जी का जीवन जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त बहुत उज्ज्वल व अनुकरणीय रहा है। इस प्रकार की किंवदन्तियों और मिथ्यारोपों के कारण कुछ लोगों के लिए उनका व्यक्तित्व विवादास्पद बन गया है, मगर हम पुराणों की कल्पनाओं को एक ओर रख कर यदि महाभारत तथा उसी के एक भाग गीता के श्रीकृष्ण पर दृष्टि डाले तो वे न केवल शारीरिक बल में ही बल्कि आध्यात्मिकता में भी अतुलनीय दिखाई देते हैं। आर्यसमाज श्रीकृष्ण जी के इसी रूप को मानता है तथा उन्हें इसी रूप में मानना भी चाहिए क्योंकि वास्तविकता यही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी उनके बारे में अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' के ग्याहरवे समुल्लास में लिखते हैं– 'देखो श्रीकृष्णचन्द्र का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश्य है जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त कुछ बुरा काम किया हो ऐसा नहीं लिखा। महर्षि दयानन्द जी को ये शब्द इसलिए लिखने पड़े क्योंकि श्रीकृष्ण जी के बारे में विधर्मियों ने ही नहीं बल्कि उनके अनुयायिओं ने भी इस प्रकार के मिथ्यारोप लगाए हैं कि शर्म का माथा भी शर्म से झुक जाता है। ऐसे आप्त पुरुष और महान चिन्तक एवं योगीराज को चोर, जार और अनेक प्रकार के कुटिलतायुक्त व्यवहार करने वाला कहना वास्तव में उनका घोर अपमान करना है।

स्वयं उन्हीं के द्वारा की गई घोषणा के अनुसार अधर्म का नाश करना और धर्म की स्थापना ही उनके जीवन का लक्ष्य रहा। उन्हें गोकुल में सकुशल पहुँचा तो दिया गया था मगर कंस ने वहाँ पर भी उन्हें समाप्त कराने के प्रयास किए, यह अलग बात है कि उसे इसमें सफलता नहीं मिली। युवावस्था तक पहुँचते–पहुँचते श्रीकृष्ण जी ने न केवल पूतना, वत्सासुर, बकासुर और अघासुर आदि का काम तमाम किया बल्कि जब वृन्दावन वासियों पर अतिवृष्टि का प्रकोप आया तो अपने साथियों के सहयोग से उन्होंने सात दिनों तक सबके ठहरने तथा भोजनादि की व्यवस्था गोवर्धन पर्वत पर करके अपनी कार्यकुशलता का परिचय दिया। श्रीकृष्ण तथा बलराम जी ने सन्दीप मुनिजी के गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण की थी। इधर कंस को निरन्तर श्रीकृष्ण जी द्वारा किए गए साहसिक कार्यों की सूचना मिलती रहती थी तथा वह उनके इन कार्यों से और अधिक भयभीत होता रहता था। अन्ततः उसने उन्हें समाप्त करने के लिए एक योजना के तहत धनुष–यज्ञ का आयोजन किया और उसमें श्रीकृष्ण व बलराम को भी आमन्त्रित किया। जब वे दोनों भाई वहाँ पहुंचे तो कंस ने उन्हें समाप्त करने के लिए महाबलशाली कुलवयापीड नामक हाथी को छोड़ा। श्रीकृष्ण जी ने देखते–देखते ही उसको मार गिराया तथा धनुष तोड़कर अपनी शक्ति का परिचय दिया। अब तो कंस बहुत अधिक घबरा गया तथा उसने चाणुर और मुष्टिक नाम के दो पहलवानों को उन्हें मारने के लिए छोड़ा। देखते ही देखते श्रीकृष्ण जी ने चाणुर का तथा बलराम जी ने मुष्टिक का काम तमाम कर दिया। उनको समाप्त करके श्रीकृष्ण जी ने कंस को जा पकड़ा तथा बलराम जी ने उसके भाई सुनामा को पकड़ लिया और द्वन्द्वयुद्ध में उनकी जीवन लीला समाप्त कर दी। कंस का ससुर जरासन्ध उन दिनों बहुत दुराचारी राजा था तथा उसने 86 राजाओं को अपनी कैद में बन्द कर रखा था। कंस की मृत्यु का समाचार सुनकर उसने मथुरा पर आक्रमण कर दिया। एक नीति के तहत श्रीकृष्ण जी ने मथुरा छोड़ दी तथा द्वारिका चले गए मगर जरासन्ध को समाप्त करने का अवसर उन्हें उस समय मिला जब महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ का आयोजन किया। उस समय भीमसेन ने द्वन्द्वयुद्ध में जरासन्ध को मार गिराया। द्वारिका निवास के समय बलराम जी का विवाह रैवतक राजा की पुत्री रेवती के साथ तथा श्रीकृष्ण जी का विवाह रूक्मणी के साथ सम्पन्न हुआ था। श्री कृष्ण जी को महाभारत के भयंकर युद्ध से महा–विनाश की संभावना थी इसलिए उन्होंने इस भयंकर युद्ध को रुकवाने के लिए भरसक प्रयास किए। दुर्योधन को यहां तक कहा कि वह पाण्डवों को केवल पांच गांव ही दे दे मगर वह दुराग्रही नहीं माना। उन्होंने एक और बहुत ही सार्थक प्रयास किया। कर्ण के पास जाकर उन्होंने उसे मनाने का प्रयास किया। उन्होंने उससे कहा कि दुर्योधन तुम्हारे ही भरोसे यह युद्ध करना चाहता है, यदि तुम युद्ध से मना कर दो तो वह यह युद्ध रुक सकता है। उन्होंने उसके सामने एक बहुत बड़ा राज भी खोल दिया कि वास्तव में वह कुन्ती का ही पुत्र है इसलिए अपने पाण्डव भाइयों से युद्ध करना उपयुक्त नहीं है। वे यह भी कहते हैं कि युधिष्ठिर को जब इस बात का पता चलेगा कि तुम कुन्ती के पुत्र अर्थात् उन्हीं के बड़े भाई हो तो वह सहर्ष तुम्हें ही अपना राज्य सौं देंगे... मगर कर्ण ने श्रीकृष्ण जी की बात नहीं मानी। जब साम, दाम तथा दण्ड, भेद आदि से भी बात नहीं बनीं तो श्रीकृष्ण जी के सामने एक ही रास्ता था– **शठे शाठ्यं समाचरेत्।** जब उन्होंने देख लिया कि युद्ध किसी प्रकार से भी टल नहीं सकता है तो उनके सामने एक ही चारा रह गया था कि इन दुराग्रही अधर्मियों को अब सबक सिखाना ही होगा। एक वीर तथा नीतिवान व्यक्ति का ऐसे समय में यही कर्त्तव्य भी बनता है।

युद्ध की सफलता का पूरा श्रेय श्रीकृष्ण जी को ही जाता है। उन्होंने न केवल अर्जुन का मोह भंग करके उसे युद्ध के लिए तैयार किया बल्कि भीष्म, जयद्रथ, कर्ण, द्रोण तथा दुर्योधन को समाप्त करने में भी उनका ही मुख्य हाथ रहा है। श्री कृष्ण जी के जीवन का लक्ष्य भले ही राजनैतिक एकता तथा सामाजिक समरसता स्थापित करना रहा हो मगर मुख्य रूप से वे आध्यात्मिक महापुरुष थे। ईश्वरोपासना उनके जीवन का अभिन्न अंग था। वैशम्पायन जी एक स्थान पर जनमेजय जी से कहते हैं कि भगवान श्रीकृष्ण आधा पहर रात बीतने पर शैया त्याग कर उठ बैठते थे और ध्यान मार्ग में स्थित हो सत्य सनातन परमेश्वर का चिन्तन, स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना किया करते थे। परमात्मा के ध्यान के बाद दैनिक कर्म शौचादि से निवृत होकर स्नान करते थे और फिर जपने योग्य गायत्री मंत्र का जप करके अग्निहोत्र किया करते थे। तत्पश्चात् चारों वेदों के विद्वानों को बुलाकर उनसे वेद मंत्रों का पाठ एवं उपदेश करवाकर उन्हें गोदान किया करते थे। वे इतने अधिक आध्यात्मिक तथा प्रभु भक्त थे कि यात्रा के समय में भी वे सन्ध्योपासना आदि करना नहीं भूलते थे। इसके उनके जीवन में कितने ही उदाहरण मिलते हैं। एक बार जब वे हस्तिनापुर जा रहे थे तो उन्होंने ऋषियों के आश्रम में विश्राम किया। अगले दिन प्रातःकाल भी उन्होंने सन्ध्यावन्दन तथा अग्निहोत्र किया था।

इसे आर्यावर्त का दुर्भाग्य ही कहना होगा कि ऐसे पुण्यात्मा, योगी, तपस्वी, प्रभु उपासक, वेदज्ञ, धर्मज्ञ, नीतिज्ञ, निरहंकारी एवं लोक हितकारी और अत्यधिक विलक्षण तथा अद्वितीय महापुरुष को कुछ अज्ञानी लोगों ने माखन चोर, व्यभिचारी, शठ तथा

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

हे अग्ने! हमें सुपथ से ले चल

ए.जी. डी.ए.वी. मॉडल टाउन, दिल्ली

की कक्षा 10 के वैभव ने आर्य समाज (अनारकली) के साप्ताहिक सत्संग में यह भाषण दिया

''अग्ने नय सुपथा राये अस्मान विश्वानि देव वयुनानि विद्वान, युयोध्यस्मजुहुराणमेनों, भूयिष्ठं ते नम उक्तिं विधेम्।।''

सुप्रभात आदरणीय इस आर्य समाज के प्रधान जी, मंत्री जी, हमारी प्रधानाचार्या जी, शिक्षक गण ,आगन्तुक सज्जन वृन्द तथा मेरे सहपाठीगण! आज मैं आपके समक्ष इस मंत्र की व्याख्या प्रस्तुत करने जा रहा हूँ जो आपको बहुत पसन्द आएगी।

सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि दयानन्द ने इस मन्त्र का यह अर्थ लिखा है।

हे सुख के दाता, स्वप्रकाशस्वरूप सबको जानने हारे परमात्मन आप हमको श्रेष्ठ मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञानों को प्राप्त कराएँ तथा हममें जो कुटिलता एवं पापाचरणरूप मार्ग हैं उनसे पृथक कराएँ और इसलिए हम अनेक प्रकार से आपकी स्तुति करते हैं कि आप हमें पवित्र करें।

मूल रूप से इस मंत्र को चार चरणों में बांटा जा सकता है। प्रथम चरण – हे प्रभु आप हमें सुपथ मार्ग की ओर ले चलें। दूसरे चरण में–आप हमें सम्पूर्ण प्रज्ञानों को प्राप्त कराएँ। तीसरा चरण – आप हमें कुटिलता एवं पापाचरण रूप मार्ग से दूर करें तथा चतुर्थ चरण–इस कारण से हम लोग अनेक तरह से आपकी स्तुति करते हैं।

मंत्र में अग्नि शब्द ईश्वर के नाम से सम्बोधित किया गया है। लोक भाषा में अग्नि को आग कहते हैं जो प्रकाश का दयोतक है और प्रकाश ही हमें उचित मार्ग दिखाता है। वेद का पहला मंत्र भी अग्नि शब्द से ही प्रारम्भ होता है। दुनिया की प्रथम पुस्तक ऋग्वेद का भी पहला मंत्र अग्नि मिवे मिके पुरोहितं है।

संसार में अनेक जीवजन्तु, अनेक पेड़–पौधे, अनेका नेक ब्रह्माण्ड तथा इन ब्रह्माण्डों में अनेका नेक जीव जन्तुओं की भावनाएँ तथा मार्ग हैं। इनमें से मैं कौन सा श्रेष्ठ मार्ग अपनाऊँ उसके लिए जो परम चेतन, सृष्टिकर्त्ता, सत्यस्वरूप और चेतनताओं का स्वामी है वही हमें सुपथा श्रेष्ठ मार्ग की ओर ले जा सकते हैं।

एक आचार्य का मत है कि अग्नि शब्द 3 अक्षरों का समूह है। अ का अर्थ है अयन, अनक्ति से क् या ग् का अक्षर मिलता है। नि णीञ् प्रापणे से मिलता है। यहां भी अग्नि से नेतृत्व का अर्थ मिलता है। वेदों का दाता ईश्वर हमारा वेद प्रदर्शक है।

जिसके आश्रय हम सभी ज्ञानों को प्राप्त करना चाहते हैं तथा सृष्टि के पदार्थों को ज्ञान देते हैं वह ज्ञान अधूरा है। यह खुद को धोखा देने वाली बात है परन्तु ईश्वर पूर्ण ज्ञानी है। उसका मार्गदर्शन उचित है। इसलिए उपनिषद् में कहा गया है सिघंते सर्वसंशयः अर्थात् जिसके दर्शन मात्र से ही सभी शंकाएँ समाप्त हो जाती है। विश्वानि दे वयुनानि विद्वान सभी ज्ञानों का भण्डार है। जुहुराणम् का अर्थ है कुटिल मार्ग एनः का पाप, सुपथा का अर्थ सरल मार्ग है। अब यह हमें तय करना है कि कुटिल एवं पापाचरण रूप मार्ग अपनाएँ या सरल।

हम सब जानते हैं कि एक बिंदु से दूसरी बिंदु को मिलाने पर एक सरल रेखा बन जाती है। वही सरल रेखा सुपथ मार्ग है। और यदि कोई उसमें अपने मन के मुताबिक उलटी–सुलटी रेखा बना दे तो वह कुटिल मार्ग बन जाता है। इसलिए संसार में अनेक भूलभुलैये जैसे पथ खड़े कर पैसे कमाने का साधन बनाया गया है। लेकिन यह सुपथ नहीं है क्योंकि यहाँ पर तो ईश्वर से प्रार्थना की गई कि हे प्रभु आप हमें कुटिलता एवं पापाचरणरूप मार्ग से दूर करो।

अन्त में प्रभु से बारम्बार प्रार्थना या अनेक प्रकार की स्तुति करने की बात की गई है। परन्तु यदि हम भूयिष्ठां पर विचार करेंगे तो यह लगेगा कि शब्द को कहने या बोलने में जितना समय लगता है उससे कई गुणा अधिक समय उन शब्दों के गुणों को धारण करने में लगता है। पर हम चतुर मनुष्य यह सोचते हैं कि सिर्फ शब्द बोलने से ही हम लाख–करोड़ बार ईश्वर की प्रार्थना कर लेते हैं पर यह तो खुद को धोखा देने वाली बात है। ईश्वर की लाख–करोड़ बार प्रार्थना करने या अनेक तरह से स्तुति करने के लिए हमारा पृथक होना आवश्यक है तभी परमात्मा हमें सुपथ मार्ग से सभी प्रज्ञानों की प्राप्ति कराते हुए हमें कुटिलता एवं पापाचरणरूप मार्ग से अलग करते हुए हमें पवित्र करेगा। अंत में मैं यही कहना चाहूँगा– ''यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचां वदति तद् कर्मणा करोति यद् कर्मणा करोति तदमि सम्पद्यते।''

☞ पृष्ठ 07 का शेष

बहुआयामी व्यक्तित्व ...

वंचक और गोपियों के वस्त्र उठाने वाला बना दिया है। भागवतादि पुराणों में श्रीकृष्ण जी के चरित्र इस तरह का वर्णन किया गया है जो किसी पतित व्यक्ति का भी नहीं हो सकता है। 'गोपाल सहस्त्रनाम' में यहाँ तक कहा गया है– **गोपालः कामिनिजारश्चौर जार शिखामणि।** अर्थात् वे परस्त्रीगामी, चोर तथा व्यभिचारियों में शिरोमणि हैं। महर्षि दयानन्द जी ने उन्हें बड़ी श्रद्धा के साथ आप्त पुरूष कहा है और श्रीकृष्ण की निन्दा करने वालों को वे दु:खी हृदय से कहते हैं– 'जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्ण सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती?' श्रीकृष्ण जी महाराज एक पत्नी व्रती थे इसलिए उनके ऊपर राधा, कुब्जा आदि अनेक महिलाओं के साथ रासलीलाएं करने की कल्पनाएं करना, मात्र उन्हें बदनाम करने के लिए ही की गई लगती हैं। बहुत आश्चर्य की बात है कि राधा को बड़े ही गौरव के साथ उनकी प्रेयसी घोषित किया जाता है तथा मन्दिरों में भी उनकी पत्नी रूक्मणी का चित्र नहीं बल्कि राधा का ही चित्र सर्वत्र देखा गया है। इस प्रकार से उनके तथाकथित भक्त क्या बताना चाहते हैं तथा आने वाली पीढ़ी को क्या संदेश देना चाहते हैं? वास्तविकता यह है कि श्रीकृष्ण के साथ राधा का उल्लेख न तो महाभारत में है और न ही भागवतादि पुराणों में ही है। राधा का उल्लेख केवल ब्रम्हवैवर्त्त पुराण (प्रकृति खण्ड 2प49) में मिलता है। इस पुराण में राधा और कृष्ण को लेकर अत्यधिक अश्लील चित्रण किया गया है मगर यहाँ पर राधा को वृषभानु नामक वैश्य की कन्या बताया गया है जिसका विवाह रायाण नामक वैश्य के साथ हुआ था। यह रायाण श्रीकृष्ण की माता यशोदा का भाई था अर्थात् श्रीकृष्ण जी का मामा। पुराणकर्त्ता ने राधा के साथ श्री कृष्ण जी का नाम किस आशय से जोड़ दिया यह समझ से परे की बात है। यही नहीं उनके ऊपर सत्यभामा आदि आठ पत्नियाँ तथा सोलह हजार रानियाँ होने के मिथ्यारोप भी लगाए जाते हैं जो एकदम काल्पनिक हैं।

वास्तव में श्री कृष्ण जी महाराज एक विलक्षण योद्धा, नीतिवान, धर्मात्मा, योगी, सदाचारी, परोपकारी, निर्भीक, निर्लोभी, शालीन और विनम्र तथा मर्यादा पुरुषोत्तम थे। इसीलिए उनके समकालीन महापुरुषों भीष्म पितामह, विदुर, महर्षि व्यास आदि ने तो उनकी भूरि–भूरि प्रसंशा की ही है मगर धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन भी उनकी प्रसंशा करने वालों में ही थे। बहुत से लोगों को यह भ्रम है कि आर्यसमाज मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी तथा योगीराज श्री कृष्ण जी आदि को नहीं मानता है मगर यह उन लोगों की बहुत बड़ी भूल है। वास्तव में इन महापुरुषों को केवल और केवल आर्यसमाज ही सही अर्थों में मानता है। महर्षि दयानन्द जी धर्म को व्यवहार के साथ जोड़ने पर बल देते हैं। उनके अनुसार यह पर्याप्त नहीं कि हम इन महापुरुषों को मानें बल्कि हमें उन्हें मानना तो चाहिए मगर उनकी माननी भी चाहिए। हम चित्र की पूजा न करें बल्कि इन महापुरुषों के चरित्र की पूजा करें अर्थात् जैसे उज्ज्वल इनके चरित्र थे, उन्हें वैसा ही मानें–जानें और वैसा ही स्वयं भी बनने का प्रयास करें। यह इतना महत्वपूर्ण नहीं है कि हम कितनी बार इनके नाम का जाप करते हैं या इनसे सम्बन्धित ग्रन्थों का पाठ करते हैं बल्कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के अनुसार इससे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि हम इनके गुणों तथा शिक्षाओं को कितना आत्मसात् करते हैं। आज इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि राष्ट्र और समाज की स्थिति को सुधारने के लिए हम स्वयं ही कृष्ण और अर्जुन जैसे बनें।

महादेव, सुन्दर नगर–174401 (हि.प्र.)

दर्शन योग महाविद्यालय की नई शाखा में प्रवेश आरम्भ

दर्शन योग महाविद्यालय रोजड की नई शाखा के व्यवस्थापक ब्र. दिनेश कुमार द्वारा पत्र के अनुसार दर्शन योग महाविद्यालय रोजड़ की नई शाखा का शुभारम्भ 1 नवम्बर 2015 को प्रभु आश्रम कुटिया, सुन्दरनुर रोहतक में हो रहा है जिसमें दर्शन के अध्यापन की योजना है। प्रवेश के लिए योग्यता– 12वीं या समकक्ष उत्तीर्ण 18 वर्षीय ब्रह्चारी। आवास, भोजन, पुस्तक आदि की निःशुल्क व्यवस्था है। इच्छुक ब्रह्मचारी सम्पर्क करें– दर्शन योग महाविद्यालय, आर्यवन, रोजड़ पत्रा. सागपुर, जिला साबरकांठा, गुजरात383307 फोन नं. 02770–287418,287518 मो नं. 09409415011

अध्यापकों के लिए एक योग संवाद : स्मृति वर्धन

● रामस्वरूप

शिक्षा का सार परीक्षा है। परीक्षा का सार प्राप्तांक हैं। सभी माता–पिता चाहते हैं कि उनकी संतान अंक लावे। परीक्षा में अधिक से अधिक अंक एवं शिक्षक चाहते हैं कि उनके छात्र 75 प्रतिशत से अधिक अंक लावे। परीक्षा में अधिक से अधिक अंक प्राप्त करने में सबसे पहला साधन स्मृति है। संतान या छात्र की स्मृति अच्छी करने के लिए प्रतिदिन एक नियोजित अभिक्रम अनिवार्य है। इसके निम्न बिन्दु हैः–

1. छात्र कक्षा में विद्यालय आरम्भ होने से 5 मिनट पहले पहुँचें। अपने बैठने (कुर्सी) और लिखने (मेज) के स्थान को साफ कर लें।

2. कक्षा में शिक्षक के आने से पहले छात्रः–

(क) करतल विश्राम– अपनी आँखों को बंद करके हथेलियों से ढंक लें।

(ख) दीर्घश्वसन– बिना आवाज किए लम्बी स्वांस लें।

(ग) कमर सीधी रखें।

(घ) मौन रहें।

3. जब शिक्षक आ जावेंः–

(च) ज्ञान मुद्रा– दोनों हाथों के अंगूठे व तर्जनी अंगुली को आपस में मिला लें। हल्का दवाब रखें। तीनों अंगुलियाँ सीधी।

(छ) कमर सीधी रखें।

(ज) केवल सामने देखें जिधर श्यामपट्ट एवं शिक्षक है। पीछे, दायें–बाये, ऊपर–नीचे नहीं देखें।

(झ) प्रश्न करने या उत्तर देने के लिए ही मौन खोलें।

4. शरीर के जैसे कक्षा में मन को भी वर्तमान में रखें। इसके लिये निम्न सद्भाव एवं व्यवहार करें:–

(ट) स्त्री सम्मान–आयु के अनुसार स्त्री को माँ जैसा, बहिन जैसा समझें।

(ठ) सर्वहित–सबका भला सोचें।

(ड) ऋतुजा–सरलता, जैसा मन में वैसा वचन में, जैसा वचन में वैसा व्यवहार में।

(ढ) दायित्व निर्वाह– हर समय, हर जगह, हर एक के साथ जिम्मेदारी निभायें।

(ण) मितव्ययता एवं सदुपयोग– कोई भी वस्तु व्यर्थ नहीं जावें, जैसे भोजन व पानी झूठा न छोडें, पानी व्यर्थ नहीं बहाये आदि।

5. स्मृतिवर्धक क्रियायें:–

(त) दीर्घ श्वसन–लंबी सांस

विशेष

(थ) प्राणायाम (इसे सावधानी से सीखा जावे एवं किया जावे) जैसे सबसे पहले **पूरक–** यानी प्राण वायु ऑक्सीजन फेफड़ों में पूरी तरह से भरें। **कुम्भक–** यानी भरी हुई श्वास को धारण करें अर्थात् ज्यादा से ज्यादा समय रोके रखें। **रचक–** घबराहट होने लगे तो दूषित वायु कार्बन डाई ऑक्साइड को निकाल दें। **शून्यक (ब्राह्य कुम्भक)–** दूषित वायु निकालने के बाद रिक्तता यानी खालीपन को पकड़ कर रखें। यह एक चक्र पूरा हुआ। ऐसा पाँच, सात या ग्यारह बार किया गया सकता है। प्राणायाम करने वाले गव्य शाकाहार ही करें यानी गो माता देशी गाय के पीले रंग के दूध दही आदि का सेवन करें। काली भैंस, रंगीन भैंस (जरसी हॉलीस्टन आदि) इनके दूध दही वैगरह से बचें।

(द) उन आसनों में जिनमें सिर नीचे जाता हो या नीचे को रहता हो, किये जावे:–

सीधे लेट कर– सर्वांगासन, हलासन, चक्रासन, मत्स्यासन।

उल्टे लेट कर– पर्वतासन

सीधे बैठकर– पद्मासन, करबद्धपद्मासन, कुक्कुटआसन, योगमुद्रासन, शशांकासन।

खड़े होकर– अर्द्धचक्रासन, पादहस्तासन।

उलटे होकर यानी सिर के बल–शीर्षासन, वृक्षासन।

6. परिवार के अभिभावक, संतान यानि छात्र के लिए निम्न का ध्यान रखें:–

(प) सुबह सूर्योदय पूर्व शौच निवृत्ति। उठते ही तांबे के लोटे का पानी पी ले।

(फ) मल त्याग के बाद अथवा स्नान के बाद उपरोक्त स्मृतिवर्धक क्रियायें कर लेवे।

(ब) स्नान के बाद अल्पाहर में सबसे पहले गौ दूध, सुबह का भोजन 12 बजे तक, भोजन पूर्व एवं भोजन पश्चात् मूत्र त्याग। भोजन के बाद व्रजासन में शंखमुद्रा।

(भ) विद्यालय से घर पहुँचे। यदि मकान है तो दक्षिण में सिर करके उत्तानपाद आसन दीर्घ श्वसन के साथ जब दोनों पाँव 35 से 45 डिग्री पर हों तब पूरक श्वास भरे और जमीन पर दोनों पाँव आवें तब रेचक प्रश्वास छोड़े।

(म) सायं को हल्का भोजन सोने के एक प्रहर (यानी 3 घंटे) पहले।

(य) रात्रि में सोने के पहले यदि दूध आदि पीना है तो आधा घंटे पहले।

(र) सोने से पहले पेशाब कर लेवे। सोते समय दक्षिण में सिर व बायीं करवट।

7. गृहकार्य सोने के पहले–पहले अवश्य करें।

वर्तमान में ही मन लगा रहे, चित्त रमा रहे यह सब तरह के छात्रों के लिए अति अनिवार्य है। जो छात्र नहीं है उनके लिए भी मन चित्त को वर्तमान में रखे रहना अति उपयोगी है। अभिभावक (यानी माता पिता आदि) हों तो वे संतान को, शिक्षक हो तो छात्रों को, स्वजीवी उद्यमी आदि हो तो सहकर्मी आदि अनेक को, तरह–तरह के शासक है तो शासन में सहकर्मियों को प्रेरणा दें, उत्साहित करें कि विवेकी बनें।

बुद्धि से मन चित्त को वर्तमान में रखें–

छात्र आदि जो भी हैं उन्हें शिक्षक आदि बराबर संस्कारित करते रहें **स्त्री सम्मान** के लिए। हर स्त्री का आदर ही हो सब तरह के छात्रों द्वारा व अन्यों द्वारा। छात्र जिस परिवार से आता है वहाँ माँ बहनें बहुत हैं। पड़ोस के मकानों में हैं माँ, बहन; गली, सड़क आदि में हैं माँ, बहिन; शिक्षालय में हैं माँ, बहिन। शिक्षिका है यानी माँ जैसी व सहपाठी छात्रा है तो बहन जैसी है। इनको हाथ पाँव आदि तन से पीड़ा (यानी प्रतिकूलता) न दें, वचन से भी कड़वे (कटु) बोल न बोलें। और मन में भी स्त्री–नारी–महिला को चोट पहुँचाने का कुविचार बने ही नहीं। ऐसा–संस्कार निरंतर देते रहना हो। 'पुरुष सम्मान' कोई समस्या नहीं है इसलिए 'स्त्री सम्मान' शब्द रखा है, सहज रूप से सम्मान पुरुष का भी छोटे बड़े जैसे भी हो।

सब का ही भला या अच्छा ही हो, इसे **सर्वहित** कह दिया जाये। तो सब मानवी मानव ही नहीं सारे ही सारे प्राणी पूरी हरियाली और आगे उपजाऊ मिट्टी (पृथ्वी), जल (आपः) वायु (पवन) आदि का हित या भला।

मन में वचन में व्यवहार में एक जैसा रहना यानी ऋजुता या **सरलता।**

हमारे साथ जो जो भी हैं उनके प्रति **दायित्व निर्वाह** यानी जिम्मेदारी निभाना। इसको **कर्त्तव्य परायणता** कह लीजिए, छात्र को गृह कार्य दिया तो उसी दिन कर ले, साथ के छात्र को दिक्कत है तो उसे दूर करा दे यानी साथी द्वारा गृहकार्य को उसी दिन पूरा करा दिया जाये। अभिभावक या शिक्षक जो भी भला करने को कहे उसे ठीक तरह समझकर के कर दिया जाये।

हर दिन हर समय हमारा व्यवहार चेतन व जड़ सब तरह के अस्तित्व से होता है। उसका **सदुपयोग** ही हो, उससे **सद्व्यवहार** ही हो। जड़ वस्तुयें हैं तो वे बेकार न जावे यानी **मितव्ययता** का व्यवहार ही हो।

सभी छात्र (या अन्य कोई) जो स्मृति अच्छी चाहता है तो मन चित्त को वर्तमान में रखें यानी कक्षा में रखें, अथवा जो कोई भी कार्य स्थान है वहाँ रखें। उसमें ये पाँच–स्त्री सम्मान, सर्वहित, सरलता, दायित्व निर्वाह, सदुपयोग अधिकतम उपयोगी हैं, पीछे या भूतकाल, आगे या भविष्य कल्पना से बचाते हैं, ये पांचों, अतः इन पर दृढ़ता रखें।

पशु की शैली में अनेक मानव उनका जीवन बिताते हैं, इन्हें पशुमानव कहा जा सकता है। अतः जैसे पशुओं के काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद को नियंत्रित करने का विवेक (सर्वहितैषी बुद्धि) नहीं होता है, वैसे ही पशु मानवों में विवेक बल नहीं होता। इस कारण से पशुमानव अनियंत्रित होता है, काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद आदि वृत्तियों से। काम से आदि में आधीन होता है पशु मानव। काम आदि सब ही 'पर' है ज्ञव (विवेक बल) नहीं, अतः यों कहें कि पशु मानव पराधीन होता है। पराधीन होने से मानव जैसा अच्छा व्यवहार नहीं कर पाता।

कोई अश्लीलता बलात्कार आदि करता कराता है ऐसा व्यक्ति 'काम पशुवृत्ति' के आधीन है। इसी तरह अत्याचार तरह–तरह के करता कराता है तो 'क्रोध पशुवृत्ति के आधीन है। प्रदूषण विभिन्न तरीके के होते हैं भ्रष्टाचार भी, जो इनको करता कराता है वह 'लोभ पशुवृत्ति' के आधीन है। अप्व्यय यानी फिजूलखर्ची साथ ही दुर्व्यवहार या दुरुपयोग करता कराता है तो 'मद पशुवृत्ति' के आधीन है। जितनी ये पशुवृत्तियाँ हैं, इनको अपने यानी मनुष्य/मानव के आधीन करने की प्रेरणा 'योग' से मिलती है। **पशु मानव को मानव यानी विवेकी मानव बनने की दिशा योग से मिलती है।**

कोई अश्लीलता बलात्कार आदि करता कराता है ऐसा व्यक्ति 'काम पशुवृत्ति' के आधीन है। इसी तरह अत्याचार तरह–तरह के करता कराता है तो 'क्रोध पशुवृत्ति के आधीन है। प्रदूषण विभिन्न तरीके के होते हैं भ्रष्टाचार भी, जो इनको करता कराता है वह 'लोभ पशुवृत्ति' के आधीन है। अपव्यय यानी फिजूलखर्ची साथ ही दुर्व्यवहार या दुरुपयोग करता कराता है तो 'मद पशुवृत्ति' के आधीन है। जितनी ये पशुवृत्तियाँ हैं, इनको अपने यानी मनुष्य/मानव के आधीन करने की प्रेरणा 'योग' से मिलती है। पशु मानव को मानव यानी विवेकी मानव बनने की दिशा योग से मिलती है।

8. आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृति।

स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीना विप्रमोक्षः।।

छान्दोग्य. 7/6

भोजन के शुद्ध होने से सत्त्व (बुद्धि) शुद्ध रहती है। बुद्धि के ठीक रहने पर स्मृति (स्मरण–शक्ति) स्थिर हो जाती है, कोई बात।

पत्र/कविता

अमेरिका जैसे देश में प्रवासी भारतीयों द्वारा वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार अनुकरणीय है

आर्य प्रतिनिधि सभा अमेरिका के रजत जयन्ति समारोह में भाग लेने हेतु (30 जुलाई से 2 अगस्त2015) Houstion नगर में पहुंचा। यहां की आर्य समाज का भवन विशाल तथा सुन्दर है। इस समाज में बच्चों का एक विद्यालय भी चलता है। APSA के कार्य कर्त्ता सेवाभावी संस्कारी, संगठित तथा बुद्धिमान हैं, जो अपने से प्रौढ़ अनुभवी अधिकारियों के निर्देश, आशीर्वाद तथा संरक्षण को प्राप्त करके पुरुषार्थ तथा उत्साह के साथ अमेरिका में वैदिक धर्म, संस्कृति, शिक्षा के प्रचार–प्रसार में सलग्न है। सम्मेलन के आयोजन को सफल बनाने हेतु देश–विदेश से आने वाले आर्याजनों के आवास, भोजन, वाहन, विद्वानों के प्रवचन, विषय, अनुशासन आदि की उत्तम व्यवस्था स्थानीय युवा वर्ग ने श्रद्धा के साथ की। मुझे आशा है कि नई पीढ़ी, भविष्य में आर्य समाज रूपी आंदोलन को तीव्र गति से विस्तृत करेगी।

ह्युस्टन से चलकर मैं न्यु जर्सी–न्यूयार्क की ओर आ गया हूँ। इन नगरों में भारत से आये सैंकड़ों आर्य परिवार हैं, जो यथासामर्थ्य, यथाअवसर आर्य धर्म की परम्पराओं को अपने जीवन में अपनाये हुए हैं। अनेक प्रवचन हुए, अनेक युवकों की वैदिक धर्म के प्रति श्रद्धा–निष्ठा तथा उनकी भावनाओं तथा कार्यक्रमों को जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। अमेरिका जैसे देश में जहां जाना,जाकर व्यवस्थित होना ही बहुत परिश्रम–साध्य है, वहां पर वैदिक सिद्धान्तों काप्रचार–प्रसार करना वस्तुतः स्तुत्य, श्लाघ्य, अनुकरणीय तथा प्रेरक है, इनकी प्रवृत्तियों को जानकर मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई।

प्रवासी भारतीयों की लगन, परिश्रम, निष्ठा, सहयोग विश्वास, संगठन, अनुशासन, कला, कौशल वास्तव में प्रशंसा करने योग्य है।

इन पाश्चात्य देशों में रहने वाले, हमारे ही सदृश मनुष्यों की इस विस्मयकारी प्रगति का दूसरा प्रमुख कारण यह भी है कि इन्होने अपनी ईश्वर प्रदत्त बुद्धि, शक्ति, समय, साधनों को मात्र अभ्युदय हेतु ही विनियोजित कर रखा है। इनके विचारों में, न वेद वर्णित मोक्ष की कल्पना है न ईश्वर साक्षात्कार का प्रयोजन; न समाधि के प्रति श्रद्धा है, न वैराग्य के प्रति आस्था; न ध्यान–जप–तप का व्रत है, न स्वाध्याय –सत्संग की अनवार्यता, न पुनर्जन्म में विश्वास है न ब्रह्मचर्य के प्रति निष्ठा, न पंचमहायज्ञों के प्रति रुचि न ऋषियों द्वारा निर्दिष्ट सिद्धान्तों–कर्त्तव्यों का परिज्ञान। बस एक ही कामना मन में बनी रहती है कि कैसे अधिकाधिक, शीघ्रातिशीघ्र, उत्तमोत्तम विषय भोगों को भोगकर सुखी बना जाय।

जिन्होंने ईश्वर प्रदत्त आन्तरिक–अभौतिक आनन्द की अनुभूति नहीं की अथवा जिनमें ऐसे सुख के प्रति विश्वास नहीं है, वे व्यक्ति इस भौतिक सुख को (दुःख रहित–पूर्ण सुख मानकर) प्राप्त करना अपने जीवन का अन्तिम लक्ष्य बनायेंगे, क्योंकि वे ऐसा नहीं मानते हैं कि ईश्वर द्वारा भी सुख विशेष मिलता है। वह ऐन्द्रियिक सुख से महान्, दुःख रहित, पूर्ण तथा स्थायी होता है। बिना ईश्वर के सान्निध्य के , बिना वेदानुशीलन, बिना ऋषि निर्दिष्ट सिद्धान्तों के परिपालन के, कोई मनुष्य चाहे चक्रवर्ती सम्राट् भी क्यों न बन जाये, पूर्ण सुखी नही बन सकता। बाहर से सुन्दर, आकर्षक, सम्पन्न सुखी, शान्त, सन्तुष्ट प्रतीत होने वाले व्यक्तियों का निकटता से निरीक्षण करें तो ज्ञात हो जाता है कि बिना ईश्वरीय विशेष ज्ञान, बल, धैर्य, संयम, क्षमा, दया के दुःखी भयभीत, आशंकित, चिन्तित, खिन्न होते ही हैं, चाहे सामान्य व्यक्ति ऐसा निर्णय न निकाल पाये।

यह निश्चित है भौतिक ऐश्वर्य से तृप्त मनुष्यों को ब्रह्मनिष्ठ, जीवन–मुक्त व्यक्तियों द्वारा निःश्रेयस् के साधनों का परिज्ञान प्राप्त हो जाये तो वे शीघ्रता से, सरलता से ईश्वर को जानकर जीवन सफल बना सकते हैं। हे अन्तर्यामिन्! पाश्चात्यों के अनुगामी, मृगमरीचिका के भ्रम में दौड़ लगाने वाले हम भारतीयों–आर्यो को तो स्व–कृपा से सद्बुद्धि दो, करो कि वेदादि शास्त्रों में प्रतिपादित पराविद्या को भी जानें, उसको जीवन में क्रियान्वित करें। स्वयं जीवन को सफल बनाकर उदाहरण रूप में विश्व के समक्ष उपस्थित होकर यह सिद्ध कर दें कि पूर्ण सुखी, शान्त, सन्तुष्ट, निर्भीक स्वतंत्र व्यक्ति किस प्रकार का होता है, तभी लोगों को आप पर, वेदों पर, अध्यात्म विद्या पर, ऋषियों पर विश्वास होगा अन्यथा नहीं।

हे प्रभो अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने का हमें अवसर प्रदान करो यही आपसे प्रार्थना है, आशा है इसे आप पूरा करेंगे।

ज्ञानेश्वरार्य
आर्य समाज
ग्रेटर ह्यूस्टन, अमेरिका

****

विश्व का उद्धार हो

आर्य हम हैं हमारा आर्य परिवार हो
आर्य हो देश सारा आर्य संसार हो

गूंज उठे घर–घर प्रीु भक्ति की मीठी तान से
सब का हो कलयाण वैदिक धर्म का प्रचार हो

लोक सेवा की लगन जीवन को गरिमाती रहे
जागते सोते हृदय में ईयवर का प्यार हो

बुद्धि निर्मल हो हमारी आत्मा बलवान हो
हो सहारा धर्म का बेड़ा भंवर से पार हो

तृष्ण जीवन की कमी न कर सके मनमानियां
जिन्दगी को दौड़ में हम को कभी न हार हो

धर्म का हो बोलबाला वेद के प्रचार से
प्राणीमात्र का भला हो विश्व का उद्धार हो

वेद प्रकाश शर्मा धारीवाल
103 अकुर–बी, वशी फलिया, हालर
वलसाड–396001
गुजरात

मन्त्रगीत

शचिव्रती सन्तान

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि संजया पत्यो मे श्लोक उत्तमः।।
(ऋ. 10.159.3)

सुन्दर शचिव्रती सन्तान हो।
जिस पर देश को अभिमान हो।।
घर जन्म लें वे पुत्र प्यारे।
जो शत्रुओं को शीघ्र मारें।
नित प्रजा प्रति रक्षक बनें जो,
मां, वसुन्धरा जिनको दुलारे।
हर कृति–कृत्य मे विज्ञान हो।
जिस पर देश को अभिमान हो।।1।।
हों पुत्रियाँ सम्यक सुखारी।
श्रंगार में अंगार धारी।
पितुलोक से पतिलोक दुहिता,
विराट बल वैभव प्रसारी।
लोकालोक का उत्थान हो।
जिस पर देश को अभिमान हो।।2।।
पत्नी स्वयं सत संजया हो।
पति–कीर्ति से उर सज गया हो।
भू विश्व का सिर मौर बनती
आदर्श जिसका निर्भया हो।
श्रम सहयोग का सम्मान हो।
जिस पर देश को अभिमान हो।।3।।

देवातिथि– देवनारायण भारद्वाज
'वरेण्यम्' अवन्तिका (प्रथम) रामघाट मार्ग
अलीगढ़ 202001(उ.प्र)

अचार, आचार और अनाचार

● डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

स्वादिष्ट व्यंजनों में जो स्थान अचार का है, आध्यात्मिक क्षेत्र में वही स्थान आचार का है। अचार यदि जिह्वा को ललचाता है तो आचार आत्मा को परिष्कृत करता है। अचार यदि भौतिक वस्तु है तो आचार आध्यात्मिक धरोहर है। साधारण सांसारिक जिह्वा लोभी व्यक्ति का समस्त जीवन अचार के आस–पास मंडराता है तो आध्यात्मोन्मुख साधक आचार के अमृतपान के लिए लालायित रहता है। यदि अचार में नमक अधिक पड़ जाय या वह कच्चा रह जाय तथा यदि आचार चरित्र हीनता की कोटि में चला जाय तो उसे अनाचार कहा जायेगा।

'अचार' शब्द के प्रारम्भ में ह्रस्व 'अ' है। संस्कृत में 'अ' का अभिप्राय है–अभाव। अतः 'अ–चार' का अर्थ होगा, जिसमें चार वस्तुओं का अभाव हो और वे चार वस्तुएँ हैं–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसके विपरीत 'आचार' के 'आ' का अभिप्राय है–असमन्ताद अर्थात् चारों तरफ से। अतः आचार का अभिप्राय होगा, जहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्रधानता हो। पर जहाँ अचार और आचार का गुड़–गोबर हो जाय, उसे 'अनाचार' कहा जायेगा।

कठोपनिषद में यमाचार्य ने नचिकेता को आत्मा संबंधी संदेश देते हुए दो मार्गों का उल्लेख किया है और वे हैं–प्रेय मार्ग और श्रेय मार्ग। अचार के स्वाद को ही प्रेय मार्ग कह सकते हैं तथा आचार के पुनीत चिन्तन को श्रेय मार्ग कहा जा सकता है। हजारों व्यक्ति अचार मय प्रेय मार्ग को अपना कर अपने जीवन को व्यर्थ ही गंवा देते हैं जबकि आचार मय श्रेय मार्ग के अनुयायी साधना के उच्च शिखर पर आसीन हो जाते हैं। हमने बहुत से ऐसे व्यक्तियों को देखा है जो अचार से आचार की ओर तो बढ़ना चाहते हैं परन्तु अचार की सुगन्ध और स्वाद से आकृष्ट होकर अचार तक ही सिमट कर रह जाते हैं तथा आचार के अति उन्नत शुभ्र आकाश का स्पर्श नहीं कर पाते। अनेक व्यक्ति गृहस्थ से वानप्रस्थाश्रम में तो आ जाते हैं लेकिन अचार का डिब्बा साथ में लाना नहीं भूलते। उन्हें हम कैसे समझायें कि अब आपको अचार की नहीं आचार की आवश्यकता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि ज्यों–ज्यों हम जीवन की अन्तिम घड़ियों की ओर खिसकें, अभी से अचारमय भौतिकता को त्यागकर आचार और अमृतमय आध्यात्मिकता को स्वीकार कर लें, लेकिन याद रखें, पथ भ्रष्ट कर देने वाले तथा मन–मस्तिष्क और शरीर को रुग्ण कर देने वाले दुर्गन्धमय अनाचार को किसी भी रूप में स्वीकार न करें।

अचार की प्रशंसा तो यदा–कदा घर की महिलाएँ ही करती हैं परन्तु आचार की महिमा में अनेक ग्रन्थ लिखे गए हैं। ऋषि–मुनि, साधु–संत, तपी–वैरागी, विद्वान–मनीषी आदि सभी मुक्त कंठ से आचार अर्थात् चरित्र का यशोगान करते हैं। संस्कृत में कहा गया है–''आचारः परमो धर्मः'' अर्थात् आचार ही परम धर्म है परन्तु अनाचारी या चरित्रहीन व्यक्ति की कठोर शब्दों में निंदा की गई है और यहाँ तक कहा गया है कि 'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः' अर्थात् चरित्रहीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। अतः आवश्यकता इस बात की है कि आचार या चरित्र के मुक्तामणि को हाथ से न फिसलने दें। यदि चरित्र ही फिसल गया तो ज्ञान प्राप्ति भी नहीं हो सकती। संस्कृत में कहा गया है–'आचाराद् लभते ज्ञानम्' अर्थात् चरित्र के पालन से ही ज्ञान की प्राप्ति संभव है।

हमारे शास्त्रों के अनुसार सब बलों में चरित्र बल सर्वोपरि होता है। इसके सम्मुख बड़े–बड़े राजा–महाराजा, रथी–महारथी नतमस्तक हो जाते हैं। महर्षि दयानन्द, विवेकानन्द, महात्मा गांधी आदि के पास चारित्रिक बल ही तो था जिसके सम्मुख विरोधी, क्रूर से क्रूर व्यक्ति भी धराशायी हो गए। चरित्र ही इस देश की महान धरोहर है। आचार या चरित्र की शिक्षा प्राप्त करने के लिए विश्व के सभी मानव भारत की शरण में आते थे–

''स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः।''

अचार का सम्बन्ध जिह्वा से है। जब जिह्वा खट्टा, मीठा, चटपटा अचार खायेगी तो उल्टा–सीधा बोलेगी। जब उल्टा–सीधा बोलेगी तो झगड़े भी होंगे, जब झगड़े होंगे तो सिर भी फूटेंगे। इसके ठीक विपरीत आचार को अपनाने वाला व्यक्ति तो पहले बोलेगा ही नहीं, यदि बोलेगा भी तो उसका मौन व्यक्तित्व बोलेगा और उसकी मौन भाषा इतनी सशक्त और प्रभावी होगी कि सब उसके आराधक या प्रशंसक हो जायेंगे। उसके चरित्र की सुगन्ध सब दिशाओं में फैल जायेगी। व्यक्ति अचार की तो एक समय में एक–दो फाँके ही खा सकता है। इससे ज्यादा खायेगा तो वह बीमार पड़ जायेगा। परन्तु चरित्र की चटनी इतनी मीठी और स्वादिष्ट होती है कि जितना ही इसको अपनाओ, यह तन–मन–प्राणों में समाती जाती है।

आधुनिक युग में अनेक सुविधाओं जैसे टी.वी., फ्रिज, वाशिंग मशीन, स्कूटर, मोबाइल आदि के रूप में एक प्रकार से अचार के ही पैकेट तैयार हो रहे हैं लेकिन आचार के जीवनदायी, प्राणदायी स्रोत सूख रहे हैं। आचार या चरित्र निर्माण सम्बन्धी शिक्षा और परीक्षा पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित रह गई है। अब लोग कभी–कभी चरित्र की चर्चा करते हुए राम, कृष्ण, शंकराचार्य, महर्षि दयानन्द आदि की चर्चा करके अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। अब तो चरित्र को अपनाने वाला 'बेचारा' कहलाता है। यदि आपने किस का भला कर दिया तो वह कहेगा, 'उस बेचारे ने मेरा भला कर दिया।' भौतिकता की इस दौड़ में चरित्र की चादर ओढ़ कर दौड़ने वाला सबसे पीछे रह जाता है। लोगों ने येन केन प्रकारेण नौकरी हथियाने वाले व्यक्तियों के लिए नए–नए शब्द गढ़ लिये हैं, जैसे–स्मार्ट, इंटैलीजैंट, टॉपर, परफेक्ट आदि। पर ये भी अनाचार की भावना से पूर्ण मुक्त नहीं है।

इस युग में अनाचार, दुराचार या भ्रष्टाचार का बोल बाला है। यदि हमें आगे बढ़ना है, अपने व्यापार को बढ़ाना है, नौकरी पर कब्जा करना है, तो इसके लिए किसी को धक्का देना पड़े, कोई बात नहीं। रिश्वत देनी पड़े, वह भी चलेगा, सिफारिश करनी पड़े, कोई बात नहीं। वही व्यक्ति सबसे महान कहलायेगा जो सबको धक्का देकर कुर्सी पर कब्जा कर ले। अनाचार को बढ़ाने में वकील आपके सहायक हो सकते हैं, पुलिस वाले आपके संरक्षक बन सकते हैं तथा भ्रष्ट लोग आपको पनाह दे सकते हैं।

आचारवान् या चरित्रवान् व्यक्ति को कोई भी अपनी कन्या नहीं देना चाहता। क्या वह चरित्र को लेकर चाटेगा? चरित्र से तो पेट नहीं भर सकता। आजकल तो सबको ऐसा दामाद चाहिए जो इनकम टैक्स, पी.डब्लू.डी. या पुलिस विभाग में काम करता हो। अब तो सबको रिश्वत लेने व देने की आदत पड़ गई है। अनाचार के इस गंदे नाले को रोक पाने में हम असमर्थ हैं।

मनुष्य में तीन प्रकार की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं– राक्षसी वृत्ति, मानुषी वृत्ति और दैवीय वृत्ति। अनाचार को राक्षसी वृत्ति कहेंगे, अचार को मानुषी वृत्ति कहा जा सकता है परन्तु आचार दैवीय वृत्ति के अन्तर्गत आता है। आइये, गम्भीरता से विचार करें, हमारे मन में कौन सी वृत्ति पनप रही है?

230, आर्य वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर (हरिद्वार)
मो. 9639149995

वैदिक प्रार्थना

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु।।
अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।।

अथर्व. 19.15.5–6

O God, make me fearless.
Let me not fear my friends or foes.
Let me not fear
from the known or the unknown
during day or night.

Let me not fear anyone
and let me have friends
on all sides.

अभय करो प्रभु, अभय करो हमें।
भूमि से न भय हो, आकाश से न भय हो।
मित्रा से न भय रहे, शत्रु से न भय हो।
भय हो न सामने से, पीछे से न भय हो।
दायें से न भय हो, न बायें से ही भय हो।
दिन में न भय हो, न रात में भी भय हो।
शत्रु मेरा कोई न हो, सब ही दिशाएं मेरी
मित्रा बनें और मेरी मित्राता की जय हो!

आर्य वधु चाहिए

आस्ट्रेलिया में कार्यरत इंजीनियर, आयु 26 वर्ष, कद 6 फुट, एम. टेक, एम.बी.ए. भारत में बसने के इच्छुक एक आर्य–परिवार के सुन्दर युवक के लिए आर्य–परिवार की सुन्दर, सुशिक्षित, संस्कारी कन्या की आवश्यकता है।

संपर्क करें : 9992000444

Addressee Left 9/09/15

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसेंस नं. U(C)-103/2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 02-03/9/2015
रजिस्ट्रेशन नं. आर0 एन0 आई0 39/57

डी.ए.वी. अटारी ने स्वतंत्रता सेनानियों को यज्ञ से दी श्रद्धाञ्जलि

स्वतंत्रता सेनानियों को श्रद्धासुमन समर्पित करने हेतु डी.ए.वी. पब्लिक अटारी में यज्ञ का आयोजन किया गया। श्री जे. पी. शूर निर्देशक डी. ए. वी. पब्लिक एवं एडिड स्कूलज् मुख्यातिथि के रूप में उपस्थित हुए। डा. नीलम कामरा प्रधाना आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा पंजाब एवं श्री जे. के. लूथरा जी विशेषातिथि के रूप में उपस्थित हुए। सर्वप्रथम मुख्यातिथि एवं विशेषातिथि को दयानंद के सेनानियों द्वारा परेड से सलामी देकर हवन हॉल तक ले जाया गया। तत्पश्चात् महंत कौशल दास डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल नेष्टा अटारी द्वारा आर्य समाज लोहगढ़ के हाल में विधिपर्वक वैदिक मंत्रोच्चारण के साथ प्रातः कालीन आहुतियों के द्वारा हवन–यज्ञ सम्पन्न करवाया गया। समस्त वातावरण वैदिक मंत्रों एवं जयघोषों से गूँज उठा।

मुख्यातिथि श्री जे. पी. शूर जी ने माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के स्वप्न योग को नित्य जीवन में सम्मिलित करने के देशव्यापी अभियान को सीमांत क्षेत्र में प्रचारित करने हेतु प्राचार्य श्री परमजीत कुमार को बधाई का पात्र बताया। भारतीय योग संस्थान द्वारा आयोजित योग कैम्प में 200 से अधिक शिक्षक लाभान्वित हुए। श्री जे. पी. शूर जी ने अपने वक्तव्य में स्वतंत्रता संग्राम में आर्यसमाज के योगदान पर प्रकाश डालते हुए कहा कि हमें भी इन महान विभूतियों के द्वारा बताए गए मार्ग पर चल कर देश व समाज की सेवा करनी चाहिए। डा. नीलम कामरा ने अपने आशीर्वचन में छात्रों को डी. ए. वी. शिक्षण संस्थानों में दी जाने वाली संस्कारपूर्ण, गुणक्तापूर्ण शिक्षा के महत्व के बारे में भी बताया। प्राचार्य श्री परमजीत कुमार जी ने सकारात्मक सोच के द्वारा सपनों को साकार करते हुए श्रेष्ठ नागरीक बनकर समाज व राष्ट्र का उद्धार करने का आह्वान किया। भारतीय योग संस्थान द्वारा विभिन्न रोगों के निदान हेतु योगा कैम्प का आयोजन भी किया गया। यज्ञ में श्री सत्यपाल पाथिक जी, श्री सुदर्शन कपूर जी, श्रीमती नीरा शर्मा आदि गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। प्राचार्य श्री परमजीत कुमार जी ने धन्यवाद किया।

आर्य समाज (अनारकली), ने तिकोना पार्क गोल मार्किट में भजन संध्या का आयोजन किया गया

वैदिक परम्परा और विचारधारा के प्रचार–प्रसार हेतु तिकोना पार्क, सेक्टर डी (डी.आई.जेड एरिया) गोल मार्किट, नई दिल्ली में वैदिक–भजन संध्या का आयोजन किया गया। आर्य समाज (अनारकली) मंदिर मार्ग के कार्यकारी प्रधान श्री अजय सूरी, मंत्री बिगेडियर श्री ए.के. अदलखा और दयानंद मॉडल स्कूल की प्रधानाध्यापिका श्रीमती स्नेह मोहन का यह सामूहिक प्रयास प्रशंसनीय था। इस वैदिक भजन संध्या का उद्देश्य समाज का आध्यात्मिक उत्थान करना है। कार्यकारी प्रधान श्री अजय सूरी जी और ब्रिगेडियर श्री ए.के. अदलखा जी की उपस्थिति ने कार्यक्रम को जीवंत बना दिया। भजन संध्या में मुख्य गायिका श्रीमती वंदना ने अपने भजन और विचारों के माध्यम से लोगों को वैदिक संस्कृति और परम्परा से जोड़ने का प्रयास किया। भजन संध्या की प्रमुख गायिकायें श्रीमती वंदना और श्रीमती छाया की भजन–शैली ने श्रोताओं को भाव–विभोर कर दिया। कार्यक्रम के अन्त में ब्रिगेडियर श्री ए.के. अदलखा जी के द्वारा किया गया सम्बोधन मन को छूने वाला था। महिलाओं ने इस कार्यक्रम में बढचढ कर हिस्सा लिया। उनका ये विशेष अनुरोध है कि इस तरह के कार्यक्रम शनिवार के दिन आयोजित किये जाएँ ताकि परिवार का पुरुष–वर्ग और बच्चे भी इसमें भाग ले सकें।

क्षेत्र से मिलने वाला यह सहयोग आर्य समाज की विचारधारा और वैदिक परम्परा का सम्मान है। कार्यक्रम का समापन शान्ति पाठ से किया गया।

इस सम्पूर्ण कार्यक्रम के प्रेरणा स्रोत आदरणीय डॉ. पूनम सूरी, प्रधान आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा दिल्ली एवम् प्रधान डी.ए.वी. प्रबंधकर्त्री समिति, नई दिल्ली रहे।

डी. ए. वी. सेक्टर -14, गुडगाँव के ईशान टुटेजा ने जीता स्वर्ण पदक

डी. ए. वी. सेक्टर –14, गुड़गाँव के लिए यह अत्यंत ही हर्ष का क्षण था जब इसी की 10ए शाखा में चल रहे स्पेशल गेम्स (विशेष शाखा) में पढ़ने वाले एक ईशान टुटेजा ने स्पेशल ओलंपिक (विशेष ओलंपिक खेल) में स्वर्ण पदक जीता। स्पेशल ओलंपिक गेम्स का आयोजन अमेरिका के लॉस एंजिलिस में हुआ था और 100 मीटर रोलर स्केटिंग में बेहतरीन प्रदर्शन करते हुए ईशान ने प्रथम स्थान (स्वर्ण पदक) प्राप्त किया तथा 300 मीटर में पाँचवें स्थान पर रहकर रजत पदक प्राप्त किया। ईशान टुटेजा जो कि ए.डी.एच.डी. (मानसिक मंदता) की श्रेणी के हैं, भारत की टीम के सबसे कम उम्र के खिलाड़ी हैं इनकी उम्र अभी 15 वर्ष है। ईशान ने 12 साल की उम्र से स्टेट और नैशनल में पहला स्थान प्राप्त करते हुए चयन प्रक्रिया के चार चक्रों को पार किया और भारत की टीम में अपनी जगह बनाई। स्पेशल विंग के अध्यापक जगबीर और कोच के. जयराज ने ईशान का पथ प्रदर्शन किया।

इसी विद्यालय के एक छात्र अंकुर देव ने फुटबॉल यूनिफाइड टीम (एकीकृत फटबॉल टीम) में काँस्य पदक जीता।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**